आरती

विविध रूप-रस-गन्ध के कलित-कुसुमों की

ए

क

चयनिका

कवि

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

आनन्द-पुस्तक-भवन

काशी।

प्रथम संस्करण

२००३ वि०

मूल्य

४)

प्रकाशक
सम्पूर्णानन्द बी० ए०, विशारद
आनन्द-पुस्तक-भवन
पहड़िया
बनारस कैण्ट ।

मूल्य ४)

मुद्रक
सूर्यनाथ पाण्डेय
सन्मार्ग प्रेस
बनारस ।

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र दत्त जी दुबे बी० ए०,
जौनपुर-नरेश (यू० पी०)

UNIVERSITY LIBRARY
30 MAR 1951
ALLAHABAD

आदरणीय

श्रीमान्

राजा यादवेन्द्र दत्त जी

दुबे

को

चेतना

मार्ग-पूनो
२००३
मातृ-मन्दिर काशी } कवि

बहुत दिनो की बात है जब आप अपने से सत्रह वर्ष छोटे रहे होंगे। बीच में अनेक परिवर्तन हुए। जर्मनी का देवता मनुष्य बन गया, जापान का वरदान अभिशाप बन गया और इटली में आग लग गई। विजयी झुक गया और विजित के गले में माला पड़ गई। न मालूम कबतक के लिये, नियति की इच्छा कौन जाने।

उस दिन जिस महान पर देश के मनचले धूल फेंक रहे थे, मुँह पर ताले लगा रहे थे और एक महा-पुरुष के नेतृत्व में लड़ने के लिये ताल ठोंक रहे थे, आज उसी नेता जी के चरणों में झुक गये, आज उसी युगमानव के शब्द मन्त्र बन गये, आज उसी पदच्युत बोस की विरुदावली से देश का कोना-कोना गूँज उठा, आज उसी सुभाष के जयहिन्द का नारा पददलित गुलामो का सहारा हो गया, आज वही त्रिपुरी का बहिष्कृत राष्ट्रपति देश का भगवान बन गया।

उस दिन जिसे पथभ्रष्ट समझ कर तिरस्कार किया था आज उसे देश के सर्वोच्च आसन पर बिठाकर पूजने में संकोच नहीं मालूम होता, तेज-तर्रार-उच्छृङ्खल और राजनीति का अनभिज्ञ बालक जानकर कल जिसे ठुकरा दिया था आज देश की चकित आँखे उस

देवता के दर्शन के लिए लालायित हो उठी है।

उधर भारत का भगोड़ा पहाड़ों के पृष्ठों को रौंदता समुद्रों के अन्तस्तल को चीरता और पृथ्वी आकाश के बीच अपने बेग से वायु को धमकाता हुआ इतिहास की बागडोर सँभाले आजादी के पीछे दौड़ रहा था और इधर गुलाम देश के नेता जिनको अपनी राजनीति पर गर्व था हथकड़ियो में हाथ डाले जेलो के भीतर अपने नेतृत्व को कोस रहे थे, बाहर वस्त्र-हीन नगी प्रजा भूख से तड़प रही थी। ठीक उसी समय बहुत दूर नहीं, इन्हीं इम्फल की पहाड़ियो से हमारा दुद्धर्ष सेनानी हमें पुकार रहा था और हम सन्देह से कान मूँदे नरक भोग रहे थे। आज जब उस महान के व्यक्तित्व का पूजा ओज हमारे सामने आया तो उसकी आरती उतारने में हमको आत्मग्लानि नहीं मालूम होती, शर्म नही लगती। अब तो उसकी प्रतिभा और तेजस्विता के प्रकाश में उसके जीवन की पुरानी घटनाएँ भी अर्थ ग्रहण करती जा रही हैं। समय का प्रवाह भी खूब है।

कांग्रेस और लीग में समझौता न हो सका, दोनो दलो के अधिनायक अपने-अपने अखाड़े में पैतरे बदलते रहे, न खुलकर लड़ सके न मिल सके। सत्तावन बयालिस में लौट आया, लीग ने कांग्रेस का साथ नही दिया। विद्रोह की आग दबाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने जनता पर जो जो अत्याचार किये उनसे मानवता काँप उठी बनैले पशुओं की तरह आदमियो का आखेट खेला गया, सम्पत्ति लूट ली गई और गॉव के गॉव जला दिये गए। लेकिन यह याद रहे कांग्रेस के नाम पर केवल हिन्दू पीसे गये, भनभनाती हुई गोलियो की वर्षा केवल भगवान राम और कृष्ण के

नामलेवो पर हुई, गोरों की रक्त-तृषित संगीनो ने केवल राणाप्रताप और शिवा की सन्तानो के रक्त पिये। क्रांति की आग आजाद-यतीन्द्र-वटुकेश्वर और ऊधमसिह के अनुगामियो के कलेजो के रक्त-फौहारो से बुझ गई, देश की हुंकृति भगतसिह-राजगुरु और सुखदेव के नौनिहालो के चीत्कारो में विलीन हो गई। कांग्रेस का जलता हुआ किन्तु अजेय सिहासन ग्राम-ग्राम नगर नगर में लहराते हुए रक्तसिन्धु के बीच डूब गया। चर्खा-चित्रित राष्ट्रिय तिरगा झुका तो नही लेकिन वलिदानी सपूतो के शोणित से लथपथ लोथो मे छिप गया। जनता का विद्रोह प्राणो के मोह मे बन्दी हो गया।

इस तरह दमन होने पर भी ब्रिटिश सरकार को शहीदो के शोणित से रँगे हाथो से फिर शासन की बागडोर उठाने की हिम्मत नहीं पड़ी। किसी चाल से अपने अत्याचारो पर परदा डालने का प्रयत्न कर ही रही थी तबतक इम्फलकी पहाड़ियो पर खड़े होकर एक हाथ रासबिहारी घोष के कंधे पर और दूसरे हाथ से सुभाषचन्द्रबोस ने ललकारा, इन्कलाब...आजाद हिन्द सैनिको ने उत्तर दिया, जिन्दाबाद...नेताजी ने और उच्च-स्वर से कहा, भारतमाता की...सिपाहियो के मिले हुए कण्ठों से एक साथ ही ध्वनि निकल पड़ी, जय...सेनापति ने हाथ उठाकर गरजते हुए कहा, जयहिन्द...सैनिको ने सलामी दी, जयहिन्द...आदेश मिला, चलो दिल्ली आजाद हिन्द के दुर्द्धर्ष सिपाही पहाड़ों को पैरो तले मसलते हुए, झाड़ों और झंखाड़ों को उखाड़ते और फेंकते हुए मातृ-भूमि की ओर चल पड़े। आज़ाद भारत से आकर गुलाम भारत के कोने कोने में बिखर गए, जयहिन्द और चलो दिल्ली से गगन-

भेदी नारों से भारत का घर-घर ध्वनित हो उठा। लन्दन का स्वर्णमण्डित सिंहासन भय से काँप गया। मुर्दों में नवजीवन का संचार हुआ, मर्दित मानवता ने अँगड़ाई ली सपूतों के स्पर्श से माता की आँखें उमड़ आईं। धीरे से राष्ट्रिय तिरंगा उठा और गर्व से आकाश में फहराने लगा। जगह-जगह शहीदों के स्मारक बनने लगे।

विवश किन्तु कूटनीतिज्ञ ब्रिटेन ने कांग्रेस के हाथों में कुछ अधिकार देकर लीगियों को ललकार दिया। परस्पर विरोधिनी भावनाओं के संघर्ष तथा आपस के तू-तू मैं मैं से देश का वातावरण गरम हो उठा। समस्त भारत साम्प्रदायिकता की आग से जलने लगा। पाकिस्तान की नींव निहत्थों की निर्मम हत्या, बलात धर्मपरिवर्तन, असहाय अबलाओं के साथ व्यभिचार तथा जलते हुए गाँवों और नगरों की भयङ्कर लपटों के सहारे उठने लगी। बंगाल के नापाक यवन-बर्बरों ने अत्यल्प संख्यक आर्य-सन्तानों के साथ वह दुर्व्यवहार किया जिसकी कहानी सुन-सुनकर पाषाणों के हृदय भी गलने लगे, प्रत्येक सहृदय का हृदय विक्षुब्ध हो उठा। कांग्रेस के राम-राज्य में राम की सन्तानों की यह दशा कभी किसी ने सोची भी नहीं थी। सब के संरक्षण के भार से दबी हुई कांग्रेस ने अनाथों की रक्षा तो दूर रही उनके आँसू भी नहीं पोंछे। बंगाल के कराल जबड़ों से निकलकर भगे हुए भयभीत भाइयों के चीत्कार से अन्तरीक्ष की छाती फटने लगी, सर्वत्र हाहाकार मच गया।

उधर चितरंजनदास और सुभाषबोस की मातृभूमि तथा शरद और रवीन्द्र की काव्यभूमि के उपासनागृहों

में आग लगी थी और इधर कांग्रेस के अनुभव-हीन सदस्य गर्ग-गौतम-कणाद और मनु के तपःपूत प्रसारित हिन्दू-धर्म को कानून के शिकंजे में कसने का अपवित्र प्रयास कर रहे थे। बिल पर बिल पास हो रहे थे। हिन्दुओं के बलहीन नेताओं का विरोध ही समर्थन हो रहा था।

अचानक चारो ओर से आई विपत्तियों के मजबूत चगुल में फँसे हुए किंकर्त्तव्य विमूढ़ हिन्दू बहुत दिनों तक बापुरी आँखो से सहायता के लिये अपने उन नए शासकों की ओर देखते रहे जिनका अभिषेक उन्होंने अपने कलेजे के रक्त से किया था, जिनके पद के लिये अपने सहस्रों सपूतो की बलि चढ़ा दी थी और जिनके हुंकार में अपने लक्षलक्ष कण्ठों के हुंकार मिलाकर बकिंघम की नीव तक हिला दी थी किन्तु शासकों का मौन-भंग न हुआ, नेतृ-हीन हिन्दुओ को निराश होना पड़ा।

बुझती हुई आग तो राख हो जाती है किन्तु दबी हुई आग की एक चिनगारी ही पर्याप्त है। हिन्दुओं की सहन-शक्ति क्षीण होने लगी, बगाल के विप्लव से विपन्न हिंदुओं के शीर्ष म्रियमाण महामना मालवीय की रोती हुई मूर्त्ति सामने नाचने लगी। एकाएक बिहार में भयकर तूफान उठा, प्रतिशोध की भावना से हिन्दुओ की आँखे जलने लगीं, म्लेच्छो की लंका फूँकने के लिये प्रत्येक हिन्दू बज्रांग हनुमान बन गया। मुस्लिम-सत्ता पत्ते की तरह थरथर काँपने लगी, लीग का तख्त उलटने लगा। महात्मा गान्धी ने मरने की और जवाहरलालनेहरू ने बम-वर्षा की धमकी दी किन्तु राणाप्रताप और शिवा की सन्तानो की गति रुकी नहीं बल्कि दोनो की धमकियो का जवाब घृणा से

दे दिया गया। अवज्ञा से कांग्रेस के उन्मत्त शासको का हृदय जल उठा। हिन्दु-संस्कृति के रक्षकों पर गोलियो की वर्षा होने लगी। जिनके घरद्वार कुल परिवार की रक्षा की जा रही थी जिनकी बहू बेटियो की आवरू बचाई जा रही थी और जिनके जलते हुए धार्मिक गृहो मठो और मन्दिरों की लपटें बुझाई जा रही थी उन्ही के हाथो से आर्य-सन्तानो का निर्ममवध अत्यन्त विनौना दुखद और हेय था। कांग्रेस की उस जागरूकता से समस्त हिन्दुओ का हृदय तिलमिला उठा। सन् सत्तावन की क्रान्ति के अमर दुर्दान्त सेनापति कुँवरसिंह की पवित्र जन्म-धरती के अनेक स्थलो पर जलियान का हत्याकाण्ड उपस्थित करने पर भी कांग्रेस के अधिकारी लीगियो के विश्वास-पात्र न बन सके, न बन सके।

हिन्दू दब गए मृत्यु के भय से नहीं, संघर्ष की दिशा बदल जाने से साथ ही यवन-बर्बरो की बर्बरता भी मन्द पड़ने लगी पाकिस्तान की आशा से नहीं, बिहारकाण्ड की बिभीषका से; भारतीय राजनीति का चक्र निरन्तर तीव्रगति से घूम रहा है, न मालूम इसका परिणाम क्या होगा। भविष्य की इच्छा भविष्य जाने।

देश की राजनीति में ही नहीं; कविताक्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। मूकवेदना का नीरव हाहाकार शान्त हो गया, अव्यक्त गीतो के व्यङ्ग्य, व्यङ्ग्य बन गये और अधिक दौड़ने से प्रगतिवादियों के पैरों में छाले पड़ गए। अब तो नाज़-नखरो के साथ लम्बेबालों पर हाथ फेरते हुए सारंगी स्वर से कविता पढ़नेवालो की धूम है, निरी तुकवन्दियो से हँसानेवाले अनेक विचित्र नामधारी कवियो की पूछ है और रीति-मर्यादा-भिन्न शब्दो के जाल बिछानेवाले जादूगर कवियों की धाक

है। साथ ही उन युवती कवियित्रियों का भी रंग है जो स्त्री-सुलभ अपने शील-संकोच घर के किसी कोने में रखकर रूप और कण्ठ के बल पर लोक-कल्याण के लिये निकल पड़ी हैं। भगवान उनका भला करे। कालस्य विचित्रा गतिः। लेकिन अनेक रूप-रंग के इन कवि-परिन्दों से कविता-कानन तभी तक ध्वनित रहता है जब तक किसी केशरी के गर्जन से वातावरण नहीं थरथरा उठता। सिंह-गर्जन से उन जीवों के प्राण ही नहीं कण्ठगत होते अपितु उनका धड़कता हुआ अन्तर भी यह स्वीकार कर लेता है कि जंगल का अधिपति सिंह ही है औरों की सत्ता कुछ नहीं।

मेरे भी ग्रह बदले। माता की ममता भरी गोद छूटते ही अल्हड़पन के साथ एकाकीपन मिला, जीवन तरंगित हो उठा, बैराग्य की ओर झुका लेकिन अव्यक्त व्यक्त न हो सका। साहित्य में बहा 'हल्दीघाटी सामने आई, साथ ही मेरी दुनिया भी रंगीन हुई। सहचरी से प्रभावित होकर छन्दों के फूलों पर 'पद्मिनी' को उतारने लगा। मातृ-मन्दिर बैकुण्ठ पर हँसा। दाम्पत्य 'शर्मदा' में साकार हुआ। दोनों पक्षों में चाँदनी बारहो मास बसन्त। लेकिन सब मिलाकर चार ही वर्ष! आँगन में आम और नीम के पेड़ एक दूसरे को गले लगाए खड़े थे। एक मधुर, एक तिक्त। मोह के कारण मिलन का रहस्य न समझ सका। दिन फिरे, गति बदली। जीवन में भयंकर तूफान उठा, अनिष्ट की आशंका से वर्त्तमान के साथ ही भविष्य भी काँप गया। जौहर मे चित्तौड़ के वक्षःस्थल पर 'पद्मिनी' और काशी की मणिकर्णिका के निठुर सीने पर मेरी धर्मपत्नी की साथ ही चिता धधक उठी। चिता की भयंकरता बढ़ी किन्तु एक क्षण में अंजली भर राख। चिता के उस पवित्र

फूल को उठाया और भादों की उमड़ी हुई लोकतारिणी गंगा के चपल-चरणो पर चढ़ा दिया। गंगा के वे ऊर्मिचरण आजतक नहीं लौटे। अब तो सरस्वती के सहारे, कल्पना के भरोसे बढ़ रहा हूँ, न जाने कहाँ और इसलिये जी रहा हूँ कि जी रहा हूँ।

व्यर्थ की उलझनों में पाठक को उलझा देना कलाकार की कला की दुर्बलता है, अपनी मार्मिक बातो को दूसरो के मर्म तक पहुँचाना सरल नहीं है, अपने भावो को अनुभूतियो को और विचारो की लहरियो को शब्दो के जाल में फँसा कर उपस्थित करना सरस्वती का प्रसाद है। दृश्य को श्रव्य बनाकर आँखो की तरह कानो को भी तृप्त करना वाणी की सबसे बड़ी विशेषता है। मुझ में वे गुण नहीं हैं, न शक्ति है और न किसी घटना को कलात्मक ढग से कहने की प्रतिभा ही, फिर भी अब तक जो कुछ मैंने कहे हैं किसी की समझ से नीरस-वाच्य-विषयान्तर भले ही हों, लेकिन है मेरे कवि-जीवन के भीतर के ही वृत्त। इसलिये अत्याज्य हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी बीती सुनाने में विभोर नहीं होता। अस्तु।

यो तो विविध शास्त्रो के पारदर्शी काशी के अनेक विद्यानिधियों से कुछ सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिनके श्री चरणों के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धा है लेकिन संस्कृत में गुरुदेव श्रीमान् पण्डित गगाधर जी शास्त्री भारद्वाज और हिन्दी में कवि-सम्राट श्री हरिऔध जी की ही एकान्तिक कृपा और आशीर्वाद ने उस प्रकाश को आत्मसात करने की विधि बताई जिसे प्राप्त कर कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, दण्डी, श्रीहर्ष, जगन्नाथ, तुलसी, सूर, कबीर और भूषण अमर हो गये, उनकी कृतियाँ बहुमुखी हो गईं। दोनों गुरुदेवों के

समीप अध्ययन और काव्याभ्याम चलने लगा, मुझे अपनी साधना आराधना और तपस्या पर विश्वास था। मेरी अन्तरात्मा पुकार कर कहती थी कि तुम्हें प्रकाश मिलेगा। मेरा अनुष्ठान चला, चलता रहा और आज भी चल रहा है लेकिन अब श्री गुरुचरणों की सहायता की अपेक्षा नही है क्योकि मुझे उनका वरदान मिल चुका है। यथार्थ यह है कि अब दीक्षित ही नहीं रहा स्नातक हो चुका हूँ।

इस पुस्तक में मेरे काव्याभ्यास से लेकर आज तक की स्फुट कविताओं का संकलन है। एक विषय की नहीं एक रस की नहीं, अनेक विषयो की अनेक रसो की कविताओ का यह स्तवक आपके सामने है। तरह-तरह के फूलो की गन्धो से क्षण भर आप का मनोरंजन हो सकता है। भिन्न-भिन्न अवसरो पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियो में और भिन्न-भिन्न छन्दों में लिखा गया यह काव्य आपको अपने अभिन्न मित्र की तरह ही आनन्द देगा। इसमें कभी उत्तुङ्ग-शृंङ्ग से पाषाणो में बल खाते हुए पृथ्वी की ओर उतरनेवाले निर्झरो का प्रवाह मिलेगा, तो कभी सावन-भादो की उमड़ती हुई गंगा की गम्भीर गति। इसके मनन से आपको अपने आदि-अन्त का ज्ञान तो होगा ही साथ ही आदि-अन्त के बीच के सुख-दुःख का अनुभव भी प्राप्त होगा। मैं क्या हूँ, जगत क्या है, मेरा जगत से क्या सम्बन्ध है इत्यादि समस्याओं का सरस हल पाकर आपका हृदय गद्‌गद हो जायेगा।

यह पुस्तक महत्तत्त्व, वायु, तेज, अप और क्षिति नाम से पाँच खण्डों में विभक्त है। तत्त्वों के गुणानुसार कविताओं के संकलन का प्रयत्न किया गया है, सम्भव है ऊपर से आते हुए विषय के कारण किसी

किसी कविता को तत्त्वो के अनुसार स्थान न मिला हो। उसके लिये इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि व्यक्ति भले ही परतन्त्र हो लेकिन उसकी अभिरुचि स्वतन्त्र है।

'आरती' के परिशिष्ट में कुछ श्रेष्ठ रूसी कविताओं का रूपान्तर महापण्डित श्री राहुल सांस्कृत्यायन की एक आज्ञा का पालन है। श्री राहुल जी लिखित सोवियत-भूमि में परिशिष्ट की कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं फिर भी 'आरती' के प्रकाशपुञ्ज में उनके द्वारा एक और प्रकाश बढ़ाने की प्रबल इच्छा को मैं रोक न सका। वह आपके सामने है। कविताएँ सत्य और यथार्थ के कितने समीप हैं यह तो आप ही जाने।

एक निवेदन और है, इस पुस्तक में कविताओं के शीर्षक नहीं दिये गए हैं इसलिये कि कविताएँ अपना शीर्षक आप बतलायेंगी। जिन कविताओं में इतना भी सामर्थ्य नही है उन्हे कविता कहना वाणी का अपमान है। मेरी समझ से कविता के ऊपर शीर्षक वैसा ही हास्यास्पद है जैसा वह आदमी जो शिर पर अपना नाम लिखकर सबको परिचय देता फिरे।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'आरती' की प्रत्येक वर्त्तिका की ज्योति आपको ज्योति-प्रदान करेगी। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' के बाद 'आरती' का प्रकाश आपको खटक सकता है किन्तु मैं आप से आग्रह करूँगा कि आप मनोयोग से मनन करे आपको शान्ति मिलेगी।

भविष्य जो कुछ कहता हो लेकिन मुझे अपने इस कार्य से बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मैं अपने कवि-जीवन के शैशव, कौमार्य और यौवन की सारी स्फुट सम्पत्ति हिन्दी जनता के सामने रख रहा हूँ।

—*—

वीणापाणि

UNIVERSITY LIBRARY
30 MAR 1950
ALLAHABAD

आरती

❀ श्रीः ❀

इच्छामि सेवाम्पदसेवकोऽहम,
आगच्छ वासं रचयाम्ब ! कण्ठे ॥
वीणाधरे ! वाणि ! दयाङ्कुरु त्वम,
पादारविन्दं शिरसा नमामि ॥

अघस्तथा त्रस्यति संज्ञयाऽस्य,
यथा गजस्त्रस्यति सिंहनाम्ना ।
वाणी-पदं तं हृदि सन्निवेश्य,
दिने-दिने किन्न नमस्करोमि ॥

आरती

यस्य स्मृतिर्धावति सिद्धिदेशम्,
ददाति यः शान्ति-सुखं शिवाय ।
एतादृशं शर्वसुतं गणेशं,
प्रणम्य सिद्धिर्भुवि का न सिद्धा ॥

तनयमिति भवानी बालकं नीलकण्ठः,
मुनिरनघतपस्वी सिद्धिदातारमिष्टम् ।
दुरित-कलभ-सिंहं वेद यं लोकसंघः,
मम विबुधगणेशः सैव सिद्धिङ्करोतु ॥

भारती

महत्त्व

३९२

पंक्ति

भूल गया मेरा पागल,
तम की उलझी अलकों में ।
छिपी हुई है मेरी दुनिया
तेरी मृदु पलकों में ॥

गिरता रहता है तरंग से जो,
बहते नद का वह कूल हूँ मैं।
मद-मोह से जो भरमा ही करे,
उसके मद-मोह का मूल हूँ मैं॥

बनमाली जिसे देखता भी नहीं,
चित से उतरा वह फूल हूँ मैं।
जिस राह से तेरे सनेही चलें,
समझो उस राह की धूल हूँ मैं॥

जिसमें नित नीरवता ही रहे,
नभ का वह एक किनारा हूँ मैं।
यह जीवन क्या है पता ही नहीं,
फिर भी इस भूमि का प्यारा हूँ मैं॥

बुझती है न आग सदागति से,
सबकी एकता का सहारा हूँ मैं।
रवि खेलता है जिसके घर में,
उसके घर का एक तारा हूँ मैं॥

आरती

नभ का सदैव शामियाना—
रहता है तना,
फरस मही का है—
वसन्त की वहार है।

सूर्य-चन्द्रमा की जलती—
है ज्योति दोनों ओर,
सुन्दर दिशाओं का
हरेक खुला द्वार है॥

झरने फुहारें बने—
तारे बने फूल-फल,
पंखा मलयाचल की—
झलती बयार है।

न्याय करनेके लिए—
बैठते कहाँ हो तुम।
कितना मनोहर—
तुम्हारा दरबार है॥

कैसी है पहेली यह—
तेरी बूझने के लिए,
अबुझ बनी है मही-
बूझता अबुझ में।
लालसा लगी है पद-
कंज देखने की मुझे,
सूझता नहीं है तो भी,
खोजता असुझ में॥

समझा विरागी जिसे—
पूछा, पूछने से जब,
समझ लिया कि-
बसते हो तुम मुझमें।
पलकें उठा के तब-
देखा अपनेमें तुझे,
अन्तर न पाया अपने-
में और तुझमें॥

घन की घटा को देख
होती कामना है यही,
बन के मयूर मैं
तुम्हारी देख माया लूँ ।।
चरण-सुधा के बदले-
है चाह होती यही,
चातक समान जल-
बिन्दु बरसाया लूँ ।।

देख सविता की छटा,
करता यही है मन,
बस के सरोज में
तुम्हारी देख छाया लूँ ।
क्यों मैं वसुधा में तुम्हें
घूम-घूम खोजूं कहीं,
क्यों न निज प्रेम को
तुम्हारी मान काया लूँ ?

गगन नहीं है यह—
नीलम तुम्हारा शीश,
मोती अलकों में गुथे
है उगे न तारे हैं।
बहता न वायु यह
श्वास ले रहे हो तुम,
मन्द-मन्द हास है, न
सुमन सँवारे हैं॥

रोम तरु, अस्थि नग—
नाग है तुम्हारा पद,
मृदुल तुम्हारी नसें-
ये न नद-नारे हैं।
पलक खुली तो दिन-
बन्द जो रही तो रात,
सूर्य-चन्द्रमा है ये न
नयन तुम्हारे हैं॥

यह तो सदैव हम
भेद जानते ही है कि,
तुमने मही मे जाल
माया का बिछाया है।
खेलती तुम्हारी दिव्य-
ज्योति भानु-मण्डल में,
कमल - निकुज में
तुम्हारी खिली माया है।।

कूल-सम यश के
विहास के दुकूल-सम,
फूल-सग तारक से
नभ को सजाया है।
नित्य ढूँढते हैं हम
व्यर्थ वसुधा में तुम्हें,
हममें छिपे हो तुम्हें
हमने छिपाया है।।

कू-कू कर कोकिल।
बताती फूली वाटिका में,
तापस बताते तुम्हें
मानस - भवन मे।
कहते सरोज सभी
भर के विभाकर में,
तुमको बताते कामी—
कामिनी - नयन मे॥

कहते चकोर चन्द्र-
कर में बसे हो तुम,
भँवरे बताते तुम्हे
सुन्दर सुमन मे।
नाथ, बतलाओ अब-
घूम-घूम खोजूँ कहाँ
माया का बिछा है जाल
चौदहो भुवन में॥

देते हो दिखाई कंज-
छबि छबीले बने,
मिलते हमें हो तुम
प्रेम के मिलन में।
कोकिल के कण्ठ मे
निवास करते हो तुम
अपनी दिखाते कान्ति
हरे-भरे बन मे॥

चारु चन्द्रिका मे नित्य
देखते तुम्हारी छटा,
पाते मुसकाते तुम्हे
खिलते सुमन मे।
दृष्टि डालते हैं जहाँ
देखते वहाँ ही तुम्हें,
मंजुता तुम्हारी ही,
बसी है मंजु घन में॥

पावन पराग बनने
के लिए भूतल से,
उड़ता तुम्हारे पद-
पंकज की ओर हूँ ।
चातक, तुम्हारे प्रेम-
स्वाति बिन्दु का हूँ बना,
मधुप तुम्हारे पद-
कंज का विभोर हूँ ।।

हो जो कुसुमाकर तो
कोकिल मुझे भी कहो,
तुम जो रसीले घन
श्याम हो तो मोर हूँ ।
हो तुम दिवाकर तो
जान लो मुझे भी कंज,
मोहन तुम्हारे मुख-
चन्द का चकोर हूँ ।।

लगन लगी है मुझे
आँख भर देखूँ तुम्हें,
किन्तु देख पाता हूँ न
नाचते नयन में।
मन में लगायी मंजु
सेज बैठने के लिए,
आओ बैठ जाओ तुम
एक बार मन में॥

मेरी कुटिया की राह
तुमने न देखी कभी,
भूल मत जाना किसी
और के सदन में।
पथ में बिछी हैं प्रीति-
पलकें तुम्हारे लिये,
आओ समा जाओ तुम
प्राण, मेरे मन में॥

विकच विनोदन नवीन-
कंज - कानन में,
शीतल - सुगन्ध - मन्द-
पावन पवन में।
विमल विमोहन अथाह
क्षीर - सागर में,
छबि से छबीले बने
सुन्दर सदन में॥

नीले बने पल्लवों से,
फूलों से फबीले बने,
और सौरभीले बने
नाना उपवन में।
ठौर ठौर खोजा किन्तु
तुम को न पाया कहीं,
नाथ, बसते हो कहो
कौन - से भवन में?

प्रेम का तुम्हारे पय-
पान करने के लिए
मत्त-सा बना हूँ
सुधबुध खो चुका हूँ मैं।
घोर रजनी है दृग
बन्द हो गये हैं अहो,
खोल दो नयन नींद-
भर सो चुका हूँ मैं॥

निधि हो दया के करुणा
के सिन्धु विश्वनाथ,
जो कुछ रहा है उसको
भी खो चुका हूँ मैं।
आर्त्त होके द्वार पर
शरण तुम्हारी पड़ा,
नाथ, रो चुका हूँ मैं
अनाथ हो चुका हूँ मैं॥

देते हो दिखायी मुझको
न सपने में कहीं,
इससे दया की बनी
रहती निराशा है।
कवि हो निराले आले
कविता बनाते सदा,
सविता तुम्हारी कविता—
की परिभाषा है॥

धन की, धरा की चाह
मुझको न होती कभी,
सेवक बना लो यही
मेरी अभिलाषा है।
कैसे, किस भाँति नाथ,
कितना बखानूँ तुम्हें,
मेरे मौन-भाव और
मेरी मौनभापा है।

आरती

चूसना अँगूठा मंजु बन के मुकुन्द बाल,
याद हमको है वह पात बरगद का।
शूकर के रद का अकेला मृदु ध्यान किया,
ढूँढ़ा डूब-डूब के पता न चला हद का॥

मन में विनोद से किसी को ढूँढ़ने के लिए,
ध्यान जो लगा के बैठ गया कंज-पद का
देखा अपने में कुछ, भूल अपने को गया
सुनने समोद लगा नाद अनहद का॥

आप अपने को तथा
जानते हमारे भेद,
किन्तु अपने को आप
हमसे छिपाते हैं।
आँसू में नहाते हैं
कहाते हैं अनाथ हम,
नाथ, हम आँसू प्रेम-
पथ में बहाते हैं॥

खोजते सदैव पर
कुछ भी न पाते पता,
तो भी पता रात-दिन
आपका लगाते हैं।
पैदा करते हैं अपने
को वसुधा में आप,
और अपने में फिर
आप मिल जाते हैं॥

घिरी रहती है विपदा
की घनघोर घटा,
पीछे रहता है पड़ा
रात-दिन पाप तो।
अधम बनेगा यह
इसका चला है पता,
घेरता सदैव इसको
है भव-ताप तो॥

मोह-मद-माया का बिछा
है विकराल जाल,
क्रोध में किसी ने दे
दिया है इसे शाप तो।
कैसे भव-सागर से
निकल सकेगा यह,
कुछ भी सहायता न
देंगे यदि आप तो॥

होते ही सकाल श्याम गौओं को चराने चले
नन्द-लाडला का रूप, रस का कलस है।
वन है विशाल भय-जाल विकराल किन्तु
हाथ में सरोज है न तीर-तरकस है॥

होता था सदैव भान उनको विलोक कर
उनके समीप सविनोद प्रेम-रस है।
ऐसे चरवाहे के सलोने पद-पंकज को
मन में रमाना कहो, कितना सरस है॥

इतने विलीन हम होते
अपने में हैं कि
चरणारविन्द का
पराग बन जाते हैं।
दीन की दुहाई पर
कान करते हैं क्यों न
हमने सुना है दीन—
बन्धु कहलाते हैं॥

'श्याम' की पुकार बिना
श्याम की सुनेगा कौन,
अहे घनश्याम, फिर
देर क्यों लगाते हैं।
जान के हमारे मन
को ही यमुना का कूल
क्यों न वहां मुग्धकरी
मुरली बजाते है॥

मुझको उतार दो
अपार भव-सागर से
भावना करो न, भव-
सिन्धु में बहाने की।
बन के सुदामा दिखलाके
भाव पारथ सा,
कामना बड़ी है प्रेम-
अश्रु में नहाने की॥

ए हो घनश्याम, अब
मुझको बना लो दास
लालसा लगी है मुझे
दास कहलाने की।
लगन लगी है पद-
कंज में न दिन-रात,
लगन लगी है नाथ,
लगन लगाने की॥

वन्धु, वन्धु ही में मग्न
कोई अपने में मग्न
कोई अति मग्न है,
किसीके आगमन में।
तेरा वह मेरा यह
कोई है इसीमें मग्न
कोई है निमग्न नाम
के लिये भुवन में॥

धन में धनी है मग्न
दीन, दीनता में मग्न
तनय पिता में पिता
सुत के मिलन में।
मैं तो रहता हूँ मग्न
केवल स्वभाव लेके
शपथ तुम्हारी मैं
तुम्हारे ही चरन में॥

तुम चन्द्र समान खिलो नभ में
हम न्यारे चकोर बने हुए हैं।
तुम वारिद-सा उमड़ो घुमड़ो
हम मोर विभोर बने हुए है॥

तुम नाथ, विभाकर-सा बिहरो
हम कंज किशोर बने हुए हैं।
करुणा से तुम्हारा भरा चित है,
हम तो चितचोर बने हुए हैं॥

मधु-सराबोर नयनों में
कितने अविकार मनों में
तुझको ढूँढ़ा सुमनों में,
सुंदर सुकुमार घनों में ॥
मुसकान-भरे अधरों में
शशि के शीतल प्रहरों में,
तुझको मैं ढूँढ़ रहा था,
मलयानिल की लहरों में ॥

कुछ तप करने पर आया
तो सपनों में मँडराया।
छिपकर मानस-मन्दिर में
कितना मुझको भरमाया ॥
खुलकर मेरी आंखों ने
जो अन्तस्तल पर देखा।
तो केवल झलक रही थी
झिलमिल-झिलमिल पद रेखा ॥

वासना के गीत गाते
मोह के प्राचीर में हम ।
डूबते ही जा रहे हैं
लोचनों के नीर में हम ।।
हम किसी के प्रेम में
अपने हृदय को खो चुके हैं ।
हम किसी के विरह में भी
रात-दिन जग रो चुके हैं ।।

नींद पलकों पर लिये हम
यामिनी भर सो चुके हैं ।
अब न हो सकते किसीके
हम किसीके हो चुके हैं ।।
चाह नित है बन सकें हम
विश्व-पथ के सफल राही ।
दे सकेंगे हम किसी दिन
चाँद सूरज की गवाही ।।

बैठ कन्धों पर किसीने,
यदि लिखे दुर्गुण हमारे।
तो किसीने लिख दिये
होंगे अमर सद्‌गुण हमारे॥
हम पथिक अनजान पथ की
चौमुहानी पर खड़े हैं।
कौन पथ जाना किधर है
मौन दुविधा में पड़े हैं॥

मन प्रतीक्षा में किसीकी
तन प्रतीक्षा में किसी की।
बीतते निशि-दिवस यह
जीवन प्रतीक्षा में किसी की॥
चाहते पथ के इशारे
हम इशारों पर चलेंगे।
हम किसीका प्यार लेकर
स्नेह-तारों पर चलेंगे॥

हम न रह सकते गगन के
अंक के अंगार होकर।
हम न जीवित रह सकेंगे
एक क्षण भू-भार होकर ॥

बार-बार बुला रहा है
लक्ष्य जीवन का हमारे।
कौन जग में है हमारा
हम चलें किसके सहारे ॥

बादलों के बीच से अब
लो, हुई आकाश-वाणी।
चल पड़े जीवन समेटे
राज-पथ से मूक प्राणी ॥

वायु

९५७

पंक्ति

किस निर्मोही माली ने
तोड़ीं उपवन की कलियाँ ।
बुझ गयी अचानक कैसे
ये नभ की दीपावलियाँ ।।

आरती

उपदिशति विरागी, मानसागार-मध्ये,
कथयति ऋतुराजे, कोकिला मंजु-कुंजे।
वदति मधुप-पुञ्जः, पावने पुण्डरीके,
वद, वससि मुरारे, कुत्र कस्यालये त्वम्॥

विमलमुख - हिमांशोरस्म्यहं चक्रवाकः,
भव ललितघनस्त्वं, हर्षितोऽहम्मयूरः।
कमलचरणयोस्ते, रौम्यहं चंचरीकः,
भव मधुर-वसन्तः, कोकिलोऽहम्मुरारे!

रहसि सुमन-शोभां, राधिका पश्यति स्म,
अपि विजन-निकुंजे, माधवो निर्जगाम।
नव-सरस-कपोलं, चुम्बयित्वा जहास,
तदनु मधुर-हास्यं, पातु मां राधिकायाः॥

बनती है मुसकान तुम्हारी
शीतल शशि की लेखा।
मेरे उर में खिंच जाती है,
मधुर हास की रेखा॥

किस शैशव की भोर सुप्ति हो,
यौवन की मदिरा हो।
निबल जरा की मदमाती स्मृति,
किसकी मौन गिरा हो॥
मानव-मन की माला हो,
किस मायावी की माया।
विधि ने भावी सी तुमको,
क्या कवि के लिये बनाया ?॥

किस नन्दन के मलयानिल की,
ललित मनोहर काया।
किस रसाल की लोन लता हो,
किस शिरीष की छाया॥
घनीभूत तुम करुण कल्पना,
किसकी हो सुकुमारी।
विधि-हरिहर-शृङ्गार-सृजित,
तुम किसकी कोमल नारी॥

किस वसन्त के उपवन के तुम,
मधुरस की सरिता हो।
किस एकान्तवियोगी कवि की,
भावभरी कविता हो।।
किस अनन्त की नीरव भापा,
माया की माया हो।
मधुर रागिनी की स्वर-लहरी,
छाया की छाया हो।।

नव प्रभात की स्वर्णिम किरणें,
सलज उषा की लाली।
अपने सोने के घट मे,
क्या तुमने देवि, चुरा ली।।
क्या नहा लवण-रतनाकर मे,
डूबी मधु-सागर में।
क्या भर दोगी मुसुकान-किरण,
मेरे लघु गागर मे।।

देवी, दुर्गा, श्री की श्री,
तुम आदिशक्ति हो रानी।
तुमसे ही नव-जीवन पाती,
शैशव - जरा - जवानी ॥

किस मोहन की मुरली-लय हो,
कितनी छिपी परी हो।
कहो कहाँ से जाल बिछाने,
हरी - भरी उतरी हो ॥

मानव-समाज को क्यों अखरा,
मेरा यह मस्त सरल जीवन।
मानव-समाज को क्यों खटका,
मेरा मधुमय एकाकीपन॥

संसार अभी क्यों ऊब गया,
मेरे गुण की परिभाषा से।
क्यों जाल चतुर्दिक् फैलाया,
धर कसने की अभिलाषा से॥

तरु के नीचे पल्लव-तट पर,
गुन-गुन कुटिया में मौन-मौन ।
जो सुख कवि को मिलता उसको,
बतला सकता मतिमान कौन ?॥
मैं क्या हूँ, क्या समझें गँवार,
जो हृदय-हीन जो भाव-हीन ।
युग-युग तक समझेंगे मुझको,
जो ज्ञानवृद्ध जो कवि कुलीन ॥

मुझको कविता सहचरी मिली,
सहचर कवि-कुल के गान मिले ।
रक्षक रघुपति-पद-प्रेम मिला,
साथी गीता के ज्ञान मिले ॥
जिसने मेरा निर्माण किया,
उससे आहार मिला करता ।
जिसने वरदान दिया उससे,
चुपके से प्यार मिला करता ॥

मैं शशि के साथ बिहरता हूँ,
मैं हँस लेता हूँ तारों से ।
मैं गा लेता हूँ हिलमिल कर,
निर्झर के मुखर किनारों से ।।
मैं खेल किसीसे लेता हूँ,
मैं बोल किसीसे लेता हूँ ।
मानव के मन की बातों को,
मैं तोल इसीसे लेता हूँ ।।

फिर क्यों दुनिया की चाह करूँ,
फिर क्यों दुनिया को प्यार करूँ ।
फिर क्यों मृगतृष्णा सी जग की,
रँगरलियों को स्वीकार करूँ ।।
फिर क्यों मन का व्यापार करूँ,
क्यों दो से आँखें चार करूँ ।
मैं किसी सुन्दरी के पीछे,
फिर क्यों भ्रम से अभिसार करूँ ।।

फिर क्यों मैं दुख से आह करूँ,
फिर क्यों जन-जन से डाह करूँ।
है हाथ किसीका मस्तक पर,
फिर क्यों अपनी परवाह करूँ ॥

सन्ध्या की गोदी में सोकर,
मैं सपने में अभियुक्त हुआ।
आँखें खोलीं, करवट बदली,
बन्धन टूटा, मैं मुक्त हुआ ॥

प्रेमासव से भरा हुआ था,
मेरे उर का प्याला।
क्यों रे निठुर, उसे ठुकरा कर,
चूर-चूर कर डाला॥

बिहस उठा मेरा नन्दन-बन,
जब सिन्दूर लगाया।
क्यों इस प्रेम-भिखारिन को,
फिर पैरों से ठुकराया॥
बिना सुरभि की कुन्द-कली हूँ,
बिना राज की रानी।
पत्थर को भी पिघला दूँ,
ऐसी हूँ करुण कहानी॥

मुझ गरीबनी पर धोखे से,
तूने तीर चलाया।
युग-शान्त महासागर में,
तूने तूफान उठाया॥
समझ रही थी जिसे आज तक,
मूल सजीवन अपना।
निकला वह केवल विनोद की,
एक रात का सपना॥

टूट गये सब तार बीन के,
कौन तराना गाऊँ।
प्रियतम, तेरे अन्तर में,
कैसे, किस भाँति समाऊँ॥

बनकर मृदु मुसकान मनोहर,
अधरों पर छा जाऊँ।
आओ प्रियतम, फूल बनूँ
मृदु चरणों पर चढ़ जाऊँ॥

मैं तो बिजली सी न पापिनी,
बन सकती हूँ मेरे नाथ!
जो पल-पल मुस्काने लगती,
बादल के रोने के साथ॥

मेरा तो पवि सा न कलेजा,
रचा गया करिये विश्वास।
कहिये तो मैं अभी काढ़कर,
प्रियतम, भेजूँ पद के पास॥

मैंने तो सीखा न किसी भी-
मानवती से करना मान।
विरहानल से जला रहे क्यों,
बनकर प्राणनाथ, अनजान ॥
किसी रसिक का चन्द्र-वदन जो,
पतिरति का है पूरा चोर।
उसे देखने को सपने में,
बने न मेरे नयन चकोर ॥

क्षमा कीजियेगा प्रियतम, जब
मुझसे रहना ही था दूर।
तब क्यों प्रेम-समेत लगाया,
मेरे माथे में सिन्दूर ॥
क्यों सपने मे आप दिखा मुख,
हँस देते हैं प्राणाधार।
मेरी कुटिया को क्यों प्रियतम,
बना रहे हैं कारागार ॥

मेरी आँखों के आँसू का,
बार-बार लगता है तार।
अच्छा होता जो बन जाता,
मोती बनकर वह उपहार ॥

मुझे भले ही आप छोड़ दें,
पर मैं कैसे दूँगी छोड़।
रति-बन्धन को आप तोड़ दें,
मैं तो उसे न सकती तोड़ ॥

कोमल कुसुमों में मुसुकाता,
छिपकर आनेवाला कौन?
बिछी हुई पलकों के पथ पर,
छबि दिखलानेवाला कौन?

महक रहा है मलयानिल क्यों,
होती है क्यों कैसी कूक ?
बौरे-बौरे आमों का है,
भाव और भाषा क्यों मूक ?
भले फबीले खिले फूल का,
क्यों अलि बनता है मेहमान ?
बरसा रहा सुधा वसुधा पर,
किस माधव का मधुमय गान ।।

छुम-छुम छननन रास मचाकर,
बना रहा मतवाला कौन ?
मुसुकाती जिससे कलिका है,
है वह किसमतवाला कौन ?
बिना बनाये बन जाते बन,
उन्हें बनानेवाला कौन ?
कीचक के छिद्रों में बसकर,
बीन बजानेवाला कौन ?

बना रहा है मत्त पिलाकर,
मंजुल-मधु का प्याला कौन ?
फैल रही जिसकी महिमा है,
है वह महिमावाला कौन ?
मेरे बहु-विकसित उपवन का,
विभव बढ़ानेवाला कौन ?
विटप-निचय के पूत पदों पर,
पुष्प चढ़ानेवाला कौन ?

फैलाकर माया मानस को,
मुग्ध बनानेवाला कौन ?
छिपे-छिपे मेरे आँगन में,
हँसता आनेवाला कौन ?
अरे कौन, यह कुसुमाकर है,
जिसकी है पहली मुसकान।
अल्हड़ यौवन सी शोभा पर,
वन-वन बिह्वल, पुलकित प्रान ॥

लेकर तेरे लिये माधुरी
भावी यौवन का शृंगार ।
छिपे-छिपे तेरे आँगन में
आया है माधव सुकुमार ॥

तनिक देख के मुसुका दे तू,
कलिके ! अपना खोल किवार ।
सुरभि-सुयश के मिस बिखरा दे,
मधुर-मिलन का पागल प्यार ॥
मधु-मदिरा का सार मिलाकर,
कर दे मधुमय मादक हास ।
कहने आया है कुसुमाकर,
तेरे यौवन का इतिहास ॥

है तेरे ही लिये बनाया,
गूँथ-गूँथ कर मानस-हार ।
पहनाने के लिये खड़ा है,
अरे खोल दे कलिके ! द्वार ॥
कोकिल का संगीत मनोहर,
भौंरों के मीठे गुञ्जार ।
सेवा में पंखा झलती है,
मलयाचल की नरम बयार ॥

चूम लिया किसने चुपके से,
कलिका का सुकुमार कपोल।
किसके साथ लगी मुसुकाने,
आलिङ्गन में पलकें खोल ॥

❁

अभी चले न अज़ान-हृदय पर
चल-चितवन के बान।
तबतक लाखसमान पिघलकर,
एक हो गये प्रान॥

सींच रहा है नन्दन-वन को
छवि मदिरा से कौन ?
मौन-मौन कितना यह तेरा
मनमोहन है मौन ॥
कम्पन का अवसान मनोहर
विकल युगल के प्रान ।
कितने प्रश्नों का उत्तर है
एक मधुर - मुसुकान ॥

मधुर-मिलन, मधु-आलिङ्गन में,
नत - मस्तक छबि - भार ।
नहीं-नहीं है किन्तु नहीं में,
हाँ की सरस - पुकार ॥
दो के बन्धन का शिर की-
रजनी में अरुण बिहान ।
कितना सरस मनोहर है,
नव-यौवन का उद्यान ॥

अब न रह सकता अकेला।
सामने जब देखता हूँ प्रेमियों का एक मेला।

कामना थी सफल जीवन
कर यहां से मुक्ति पाऊँ।
राग ने घेरा मुझे कैसे
सनातन, मैं निभाऊँ।

भँवर में है नाव मेरी
किस तरह उस पार जाऊँ।
और यह भी सोचता हूँ
किस तरह मैं लौट आऊँ।

प्रथम ही जब था विरागी
प्यार से था राग पाला।
हाय, अपने आप ही मैंने
गले में पास डाला।।
घेरता ही जा रहा है रात-दिन जग का झमेला।

कह रहा सच, आज से पहले
पुलकता उर नहीं था।
मैं किसी गज-गामिनी से
मिलन-हित आतुर नहीं था।
आज जीवन की सफलता
जा छिपी क्यों दूर में है।
आज मेरी असि-परीक्षा
हाथ के सिन्दूर में है।।
आ रही मधुयामिनी के सँग मिलन की मधुर वेला।

मौन रहकर क्या करोगी ?
और मेरे रिक्त उर में मधु-मधुर-रस ही भरोगी।

बन्धनों से मुक्त होना तो बहुत ही दूर रानी।
लग गया मेरे करों का माँग में सिन्दूर रानी।
हृदय एकाकार बनने के लिये जब घुल रहे हैं।
फिर न क्यों मन के, नयन के, प्राण के पट खुल रहे हैं।
तब न मन से मन मिला था, था अपरिचित प्यार तेरा।
आज तेरे मृदु-पदों पर झुक गया संसार मेरा॥
प्यार से भुज-पाश क्या मेरे गले में डाल दोगी ?

इस प्रणय का मूल्य कैसे आँक सकता मुक्त योगी।
इस मिलन का मूल्य तो कुछ जान सकता चिर वियोगी।
गुदगुदाता है मुझे यह आज का शृङ्गार तेरा।
क्या प्रिये, स्वीकार होगा हृदय का उपहार मेरा।
प्रणय-भिक्षा माँगता हूँ, आज मैं निर्धन, धनी तू।
आज ही मैं कवि बना मेरी सरस-कविता बनी तू॥
चाँद का घूँघट हटा क्या मुस्करा के बोल दोगी ?

❁

एक युग का एक दिन है।

आँसुओं के साथ ही तो मेघ रिमझिम बरसता है।
एक क्षण की मधुर झाँकी के लिये मन तरसता है।

आज वेला-सुमन पर बिखरे हुए हैं अश्रु घन के।
बादलों में चाँद छिप-छिप दूर करता ताप तन के।

जिस तरह घन के उदर में जल रही बिजली निरन्तर।
उस तरह मेरे हृदय में वेदना जलती प्रखर-तर।
आज मेरी भू मलिन है, आज मेरा नभ मलिन है॥

मेघ-रव वर्षण गगन पर इन्द्र-धनु की छवि सुहाई।
कौन सह सकता अरे, इस मधुर-रिमझिम में जुदाई।

प्रेम की भाषा न जबतक जान पायी थी कुशल था।
कौन जाने, यह कि, वह रे, कौन-सा जीवन सफल था।

प्राण की बाजी लगा दी तब कहीं पर प्यार पाया।
हाय धोके में सुधा के, गरल पर अधिकार पाया।

पुरुष-नारी से बनी है सृष्टि ही प्रभु की निराली।
एक प्राणी के बिना रे, विश्व सूना, सृष्टि खाली।
आँसुओं की बाढ़ में अब एक आशा का पुलिन है।

आरती

दो व्याकुल हृदयों का जब
होता है मधुमय मृदुल-मिलन ।
कौन कहाँ से करता है
अज्ञात-सुधा से तन सिंचन ॥

खुले-अधखुले नयनों में,
कितने मधु का आकर्षण ।
गगन-सुधाकर को हँसता है,
एक-एक इसका कण ॥

हृदय-हृदय के रंग मंच पर,
उसी प्रपंची का नर्तन ।
तरुवर से लतिका का चुम्बन,
तरु से लतिका का ठगगन ॥

सुखमय होली का उत्सव ।
फाग-गान है पक्षी-रव ॥

वासन्ती के मधुर-अंग से,
मलयानिल का आलिङ्गन।
शशि के चुम्बन से सन्ध्या का,
वह तारकमय पुलकित-तन ॥

फाग खेलते विकल-राग से,
रात-रात भर भूमि-गगन।
भिगी इसीसे वसुन्धरा है,
कौन कहेगा है हिम-कन ॥

निर्दय नभ करता गुलाल से
उषा-प्रिया का उर-मर्दन।
वही दिखाती हटा तिमिर-पट
शिशु रवि के मिस रक्त-स्तन ॥

आज प्रकृति भी है पागल।
मनसिज का रसमय कलकल ॥

❁

भारत-माँ को पिन्हा मनोहर स्वतन्त्रता की सारी।
राणा ने रँग दिया कहाँ वह रक्त-भरी पिचकारी॥

कहाँ अमल उत्साह भरी वह फाग-गान की बोली।
कहाँ जलेगी वीर-पद्मिनी की वह पावन-होली॥

अभी सुभाषचन्द्र ने खेली वर्मा में होली है।
अबतक उस चौताल-गान की गूँज रही बोली है॥

केवल हँस-हँस समय बितालो बनाबनाकर टोली।
तृण-समूह में आग लगा दो, यही तुम्हारी होली॥

तेज

४४१ पंक्ति

दिनकर-कर से अश्रु फूल के
पोंछ-पोंछ कर कहता है।
अरे फूल, मत रो, न किसी का
समय एक सा रहता है॥

नवा माला यस्याः लसति कलकण्ठे विललिता,
यया देव्या लोके भवति भव-माया विचलिता।
भजन्ते सन्तो यां जगति जगदम्बां विकलिताम्,
अहं वन्दे, वन्दे, पुनरपि च वन्दे मनसि ताम्॥

अहज्ज्ञाने भूत्वा सततमुदिता भासि भुवने।
खलाहारङ्कृत्वा वितरसि शुभाशीर्निजजने॥
ममागारेऽपारे, मनसि वस, चागच्छ हि गले।
उमे, मायारूपे, जननि, गिरिजे, देवि, विमले॥

[stamp]

नित याद किया करता प्रभु को.
अपने प्रभु को अपना लिया है।
चरणामृत - पान किया करता,
इससे मन को भी मना लिया है॥

किसीकी मुझको परवाह नहीं,
किसी आँच मे खूब दना लिया है।
जग मे रहने के लिये कभी से,
अपना कुछ ध्येय बना लिया है॥

आदर्श

इससे मुझसे बनता जो कहीं,
फिर आँख न कानी किया करता।
अपनेपन का अभिमान मुझे,
अपनी मनमानी किया करता॥
पढ़ता हूँ न गा के कभी कविता,
पढ़ने में न पानी पिया करता।
कविता न जनानी किया करता,
कविता मरदानी किया करता॥

मन से निस्पृय हूँ सदा रहता,
दुनिया की मुझे परवाह ही क्या।
मिल ही गया चाहता था जो यहाँ,
अब विश्वमें चाहना-चाह ही क्या॥
न बनाता मुझे न बिगाड़ता है,
जग से फिर प्रेम क्या डाह ही क्या।
कविता सुन के यदि वाह किया,
न किया यदि तो मुझे आह ही क्या॥

हो गये त्रिनेत्र के
अचानक नयन बन्द।
मन्द-मन्द तन का
प्रकाश बढ़ने लगा॥
सीधा मेरुदण्ड कमलासन
सुदृढ़ बँधा।
प्राण नाड़ियों से
उतरने चढ़ने लगा॥

कम्प-हीन दीपक-शिखा-
सी ज्योति जल उठी।
भभक-भभक ब्रह्म-
तेज कढ़ने लगा॥
खुल गयीं गाँठें सभी
षड्चक्र-पद्म खुले
ब्रह्म-ब्रह्म-ब्रह्म रोम-
रोम पढ़ने लगा॥

जग के विषय जग
को दे नवद्वार रोक।
प्राणापान सम किया
अलख जगाने को॥
सुख ब्रह्म-रन्ध्र का खुला
सुधा ढरक उठी।
कुण्डली जगा ली आत्म-
दीप जल जाने को॥

मान - अपमान - शीत
उष्ण का न ज्ञान रहा।
ध्यान रहा ध्येय का न
लगन लगाने को॥
नयन खुले तो ब्रह्म
वन्द भी रहे तो ब्रह्म।
रह -गया ब्रह्म-ब्रह्म-
ब्रह्म बन जाने को॥

खुल गया तीसरा विलोचन
त्रिलोचन का।
नेत्र की प्रभा से भरी
भूतनाथ की कुटी॥
रुद्र में अलख एक
ज्योति भी चमक उठी।
दीप्ति से दमक उठी
शंकर की त्रिकुटी॥

शीघ्र अपने में रज-
रज को समेट लिया।
भेंट लिया नभ, ले
ली नागिन की लकुटी॥
कमर दिगम्बर की
चाप सी लरक उठी।
ढरक उठी गंगा
फरक उठी भृकुटी॥

डिम - डिम - डिम उठा
गूँज डमरू का नाद ।
ताण्डव के उग्रभाव
आने लगे हर में ।।
नाँचे देव दानव
त्रिदेव सविनोद नाँचे ।
नभ मे पयोद नाँचें
जल जलधर में ।।

नाँचे यक्ष - किन्नर-
पिशाच-भूत-प्रेत नाँचे ।
नाँचे निशाकर, कर
नाँचे दिनकर में ।।
हिल के सुमेर नाँचे
वरुण - कुबेर नाँचे ।
घेर नाँचे गरुड
सुमेर नाचे कर मे ।।

घहरत घरी - घंट
एकताल घंटन लौं।
होत निरघोष जिमि
सावन के घन में ।।
वजत नगारे नर
करत सराग गान।
छान-छान भंग भूत-
नाथ के भवन में ।।

ले ले फल-फूल लोग
गावत गिरीश - गीत।
पावत अपार मोद
शम्भु के मिलन में ।।
वम्म महादेव बम्म-
बम्म महादेव आज।
घम्म-घम्म घोर नाद
होत मन्दिरन में ।।

धो-धो के पदारविन्द
प्रेम-अश्रु से सदैव ।
अपने उमेश से
विनीत बन जायेंगे ।।
ज्ञान - वरदान माँग
लायेंगे महेश्वर से ।
हिय के हिंडोले मे
गिरीश को झुलायेंगे ।।

अक्षत - धतूर - फल-
फूल - भंग - बेलपत्र ।
प्रेम में मिला के पद-
कंज पै चढ़ायेंगे ।।
गायेंगे - बजायेंगे
लजायेंगे दिगम्बर से न
जैसे हो सकेगा आज
शम्भु को रिझायेंगे ।।

चाहो तो तिरंगा फहरा
करे खमण्डल में।
चाहो तो कुलाबा मही
व्योम का मिला दो तुम ॥
एक ही निमेष में
खलों को बरवाद करो।
पहला जमाना फिर
विश्व पर ला दो तुम ॥

वार पर वार हो रहा है
दम्भियों का किन्तु।
एक ही लपेटे में
कलेजा दहला दो तुम ॥
चाहो तो उखाड़ दो
उभाड़ दो रसातल को।
सिंह - सी दहाड़ से
पहाड़ को हिला दो तुम ॥

क्रोध की तुम्हारी कहीं
आग जो भभक उठे।
कालिका डभक उठे
भस्म हो महीकुटी॥
विष से बुझी जो तल-
वार लहरा के उठे।
देखो फिर विधि की
विधानता टुटी फुटी॥

धर के दवा दो तो
महीधर चरक उठे।
दूर से गिरीश की
दरक उठे त्रिकुटी॥
लरक उठे भूमि ख-
मण्डल खरक उठे।
युवक, तुम्हारी जो
फरक उठे भृकुटी॥

जान को हथेली पर
रख के पढ़ाया मन्त्र ।
राणा का पढ़ाया वह
मन्त्र पढ़ते चलो ॥
सूरमा शिवा का नाड़ियों
में दौड़ता है खून ।
क्यों न फिर चौगुनी
कला से कढ़ते चलो ॥

खून पर खून देख
क्यों न खौल उठे खून ।
चाटक चलाके चटके-
से चढ़ते चलो ॥
साहस बढ़ाके भौंह
सिंह - सी चढ़ाके सदा ।
युवक, हमारे तुम
आगे बढ़ते चलो ॥

कौन है उठाता आँख
क्रोध से तुम्हारी ओर।
अटक रहे हो क्यों
झपट उठ ताल दो॥
भर लो असीम तेज
भीम-सा अकूत बल।
तन से अधीरता
सुभाष सा निकाल दो॥

चहल - पहल का
तहलका मचादो फिर।
कण्ठ में वितुण्डमाल
के वितुण्ड-माल दो॥
बाज-सा हहा के—
हहरा के लहरा के उठो।
युवक, फरेरा फहरा
के जान डाल दो॥

सिह के समान बी
सूरमा प्रताप सिंह ।
चल जब तेरी तल-
वार ने कहर की ॥
तेरी आनबान देख
चेतक की शान देख ।
मुगल - समाज पर
राज पर लरकी ॥

आह की कतार है कि,
काल किलकार है कि,
तलवार - धार है कि,
जीभ अजगर की ॥
हाहाकार, हाहाकार,
हाहाकार मच गया
बच न सकेगी अब
जान अकबर की ॥

चेतक की पीठ पर
सिंह को सवार देख ।
मुगल तयारी करने
लगे क़बर की ।।
करके चढ़ाई जब
तीर-सी चढ़ाई भौंह ।
लोग कहते थे यह
भौंह है बबर की ।।

नंगी तलवार देख
वार पर वार देख ।
मानसिंह कायर की
बायीं आँख फरकी ।।
भाग चलो, भाग चलो
आ गया प्रताप सिंह ।
जम न सकेगी अब
धाक अकबर की ।।

हो गया पवन जब
राणा ने इशारा किया।
शोर था उड़ा है आज
घोड़ा आसमान में ॥
शाह से कहो कि वह
अरब मदीना भगे।
राणा की विजय अब
एक ही निशान में ॥

क़सक ख़ुदा की वह
क़हर मचाने चला।
रह न सकेंगे अब
मुगल जहान में ॥
दिक सा, बुखार सा,
क़यामत सा आता चढ़ा।
भागो तलवार मियाँ,
रख दो मियान में ॥

केसरिया तन पर, वक्ष तान,
चल पड़े युद्ध में नवजवान।
होली जल उठी, जलीं सतियाँ,
अब भी कण-कण में विद्यमान।।

जौहर-व्रतवाले चिरंजीव।
हे रण-मतवाले चिरंजीव।।

वह करामात थी वीरों में,
मेवाड़ - देश - रणधीरों में।
अड़ गये हिमालय के समान,
बँध सकी न माँ जंज़ीरों में॥

मेरे प्रताप, तुम चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

बढ़ चले निडर हथियारों में,
चढ़ चले निठुर तलवारों मे।
पीछे न एक डग फिरे कभी,
चुन गये वीर दीवारों में॥

हे राय हक़ीक़त, चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

सह भूख-प्यास की ज्वालाएँ,
पहनीं कड़ियों की मालाएँ।
कारा के रौरव से निकाल
ले गयीं तुझे सुखालाएँ॥

युग-युग यतीन्द्र, तुम चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

अपने तन को बरबाद किया,
उजड़े घर को आबाद किया।
माता की जय का नाद किया,
पर हम सबको आज़ाद किया॥

आज़ाद-भगतसिंह, चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

रख दिया शीश तलवारों पर,
थे कूद पड़े अंगारों पर।
थी एक लगन, था एक ध्येय,
सो गये रक्त-फौहारों पर॥

मेरे गणेश, तुम चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

जलियान-रक्त से निकल पड़े,
प्रज्वलित धधकते अंगारे।
लो आग, क्रान्ति की भभक उठी,
डूबे रवि-शशि, डूबे तारे॥

मेरे ऊधमसिंह, चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

भारत के मनमाने गुलाम,
जिसको न विधाता जान सके।
गाँधी - आज़ाद - जवाहर भी
जिस वीर को न पहचान सके॥

तुम पग-पग वीर चलो दिल्ली,
जिसका जयहिन्द प्रयाण-गीत।
जिसके चरणों से लिपट गयी,
हिन्दू-मुसलिम की हार-जीत॥

युग के विकास, तुम चिरंजीव,
युग के विहास, तुम चिरंजीव।
मेरे सुभाष, तुम चिरंजीव,
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

झन-झन-झन माँ की हथकड़ियाँ।

पैरों में बँधी बेड़ियाँ,
गिनती दुख की व्याकुल घड़ियाँ।
कारागृह में झनक रही हैं,
झन-झन-झन माँ की हथकड़ियाँ॥

बन्दी अलिनी कमल-कोष से
मुक्त हुई गुनगुनगुन गायी।
उषा हँसी अपने आँगन में,
चकवा से चकई मुसुकायी॥

तो भी टूट सकीं न अभी तक
पराधीन जननी की कड़ियाँ।

तोड़ेंगे हाँ तोड़ेंगे अब
तोड़ेंगे जननी की कड़ियाँ।
चालिस कोटि जनों के सिर की
पग पर रहतीं पड़ी पगड़ियाँ॥

तन-तन, मन-मन पर बिखरी हैं
नेताओं की मधु-फुलझड़ियाँ।

क्यों रुक गये, कपोलों पर क्यों
बिखर गयीं आँसू की लड़ियाँ।
चलो मन्त्र पढ़-पढ़ देंगे तिल-तिल
आगे बढ़ने की जड़ियाँ॥

देखो अपने आप टूटतीं
माँ के हाथों की हथकड़ियाँ।

प्रियतम, चलो चलें उस पार।
शोणित से दूँ पाँव पखार॥

जहाँ शहीदों के शरीर से बहती हो शोणित की धार।
गर्दन पर गर्दन गिरती हो झन-झन करती हो तलवार॥
जहाँ ग़रीबों की आहों से राख हो रहा हो संसार।
माँ की आँखों के आँसू से उमड़ रहा हो पारावार॥

प्रियतम, चलो चलें उस पार।
तजो वासना का अब प्यार॥

बरस रहे हों आसमान से दीन किसानों पर अंगार।
जहाँ लोग भूखों मरते हों और मचा हो हाहाकार॥
असहायों की गर्दन पर दुश्मन की फिरती हो तलवार।
बलिवेदी पर चढ़ें, देश का कुछ भी हो जाये उद्धार॥

प्रियतम, चलो चलें उस पार,
देखो मत मेरा शृंगार।
ले लो हाथों में तलवार,
करना है माँ का उद्धार॥

दुर्द्धर्ष बोस

रगों में खूँ उबलता है हमारा जोश कहता है।
जिगर में आग उठती है हमारा रोष कहता है।।
उधर कौमी तिरंगे को सँभाले बोस कहता है।
बढ़ो तूफान से वीरो, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली।।

हमारे जन्म की धरती हमारे कर्म की धरती।
हमें रो-रो बुलाती है हमारे धर्म की धरती।।
बुलाती है हमें गंगा बुलाती घाघरा हमको।
हमारे लाडले आओ बुलाता आगरा हमको।।

जवानी का तकाज़ा है रवानी का तकाज़ा है।।
तिरंगे के शहीदों की कहानी का तकाज़ा है।।
गुलामी की कड़ी तोड़ें तड़ातड़ हथकड़ी तोड़ें।
लगाकर होड़ आँधी से ज़मीं से आसमाँ जोड़ें।।

भारती

उधर आगे पहाड़ों के अभी आसाम आता है।
हमारा नव गुरुद्वारा अभी बंगाल आता है॥
वहाँ से दस कदम दिल्ली वहाँ से दीखती दिल्ली।
चलो लें खून का बदला व्यथा से चीखती दिल्ली॥

जलाया जा रहा काबा लगी है आग काशी में।
युगों से देखती रानी हमारी राह झाँसी में॥
शिवा की आन पर गरजो कुँवर-बलिदान पर गरजो।
बढ़ो दरते पहाड़ों को भगत की शान पर गरजो॥

हिमालय ने पुकारा है जननि-पय ने पुकारा है।
हमारे देश के लोहिया-उषा-जय ने पुकारा है॥
बढ़ो जयहिन्द नारों से कलेजा थरथरा दें हम।
किले पर तीन रंगों का फरेरा फरफरा दें हम॥

बन के विरोधी धर्म-
युद्ध करने के लिये।
ठेके लिये पातक के
साज साजने लगे ॥
उनके कपाल पर
पाप की गिरी है गाज।
तो भी देख-देख मुझे
आज गाजने लगे ॥

धर्म के बहाने दिल
खोल लड़ने के लिये।
लोग हौसिला भरे
समोद राजने लगे ॥
बढ़े चलो, बढ़े चलो,
न वीर, विचलो अड़ो
धर्म-युद्ध के अनेक
वाद्य बाजने लगे ॥

गाज-सी गिरेगी लाज
बाज-सी गिरेगी आज।
संगर के बीच निज
आँख के उघारे ते ॥
लवर चलेगी झुलसेगी
कूर - कोहिन को।
थहर उठेंगे एक-
एक के पछारे ते ॥

जहर के झारे ते-
चढ़ैगो विष गातन मों।
मेदिनी चलेगी बह
अश्रु - नद - नारे ते ॥
ठहर सकेंगे वे न
हहर उठेंगे अरि।
कहर मचाके एक
बारहू प्रचारे ते ॥

चक्र दिया हरि ने
त्रिनेत्र ने त्रिशूल दिया।
सागर ने रत्न, एक
दण्ड यमराज ने॥
पावक ने शक्ति दी
कमण्डलु, प्रजापति ने।
वायु ने धनुष दिया,
वज्र सुरराज ने॥

भर के कुबेर ने
सुरा से एक पात्र दिया।
भर दिया तेज, रोम-
रोम दिनराज ने॥
वीर महिषासुर से—
युद्ध करने के लिये।
ले तू अस्त्र-शस्त्र
आदिशक्ति, लगी राजने॥

अम्ब, तू दिखाके वरखाके
वारिवाहक से।
भव के निराले भाव
मानस में भर दे॥
लोग वीर नेता कहें,
विश्व में विजेता कहें।
ऐसा तू हमारे बाहु-
बल में असर दे॥

परदे हटा दे आँख
के अनन्त आदर दे।
पाप को हमारे
उड़ने के लिए पर दे॥
दूर दे हमारे द्वेष-
क्लेश आ, कतर दे माँ,
भर दे सुधा से घर
सन्तति सुघर दे॥

कवि की दिवंगता पूज्य माताजी ।

जल

५६९

पंक्ति

जीवन का है यही मूल्य,
यह क्षणभंगुर संसार।
दो दिन के ही लिए पथिक,
जग का रसमय व्यापार॥

कुशलकरमपारं, नन्दनं निर्विकारम् ।
अखिलभुवनपालं, व्यालमालं करालम्
विमलविविधवाणीं, शूलपाणिंविगर्वम्,
मनसि रहसि शर्वं, सर्वदाऽहम्भजामि ॥

सितसुरभितभूत्या, भूषितो यस्य कायः,
विहसति जगदम्बा, जाह्नवी यस्य शीर्षे ।
विलसति सुखदाता, चन्द्रमा यस्य भाले,
मम भजति मनस्तं, शङ्करं शीलमन्तम् ॥

पावन बनाके तन
को जो बनना है सुखी
दीन-दुखियों के पाप
ताप से निवहिये।
उनसे धधाके मिलना
है जो दिखाके भाव
लगन लगाके लगे
रात-दिन रहिये॥

-लालसा लगी है गहने
की जो किसीके पद,
उनके निराले पद-
पंकज को गहिये।
पार करना है भव-
सागर तो बार-बार
सीताराम सीताराम
सीताराम कहिये॥

जीवन बनाने को
मिलाहै, दिव्य जीवनतो,
डूब-डूब कर प्रेम-
जीवन में बहिये।
कामना लगी है उनसे
ही मिलने की अहो,
प्रेम की कराल-ज्वाल
में ही नित्य दहिये॥

जीभ जपने को मिली,
साँस भजने को मिली,
जपते सदैव भजते ही
उन्हें रहिये।
यदि है बनाना पूत
इह लोक परलोक।
सीताराम, सीताराम,
सीताराम कहिये॥

किसी कुंज में एक मनोहर
फूल गया था फूल।
उसकी शोभा देख देखकर
मधुप रहे थे भूल॥

रंग-रूप उसका था उपवन
अवनीतल अनुकूल।
मधु-कमनीय-कान्ति से मोहित
करता था वह फूल॥

उसकी सुरभि समीरण से थी
फैली चारो ओर।
गुनगुन का उसके समीप
हो रहा शब्द था घोर॥
उसको छूने की अभिलाषा
होती बारम्बार।
मानो मानव-मन हरने को
उसका था अवतार॥

उस लोचन-रंजन प्रसून का
मंजुल था आकार।
रसिक-लोग उससे पाते थे,
पल-पल मोद अपार॥
और फूल लज्जित होते थे,
लख उसकी मुसुकान।
उसको भी मधु-सुन्दरता का
था अतिशय अभिमान॥

इतने में प्रतिकूल पवन ने
चली अति कुटिल चाल।
जिससे निपतित हुआ भूमि पर
विकसित कुसुम अकाल॥

उस क्षण उसने कुंज-वासियों—
से यह कहा सशोक।
तुम सब फूलो, फलो यहाँ सुख
मैं न सका अवलोक॥

क्या कभी ठहर सकती है ?
पानी पर कर-कृत रेखा ।
जादू के बल से उसको
किस जादूगर ने देखा ॥
ऊषा चुपके से जाती
हा, लुटा-लुटाकर सोना ।
उस पर लग गया अचानक
कब किस टोनहे का टोना ॥

लतिका से खेल रही थी,
कल किसलय-दल की लाली ।
वह सूख रही है, अब है
उसपर न तनिक हरियाली ॥
जल पर बुलबुले बिछे थे,
थी सबकी चढ़ी जवानी ।
सनसन मारुत बहने से
हो गये फूटकर पानी ॥

रोकने से क्या न रुकती आँख की
बिरह की पहचानवाली धार है।
ठेस लगने से फफोले-जिगर पर
लग गया क्या आँसुओं का तार है?
आह की गरमी न गर जाती सही
तो नहालो आँसुओं की धार में।
हार फबता है नहीं मोती बिना
नयन के मोती गुहालो हार में॥

आँसुओं के साथ लापरवाह हो
आज क्यों दिल बेतरह जाता बहा।
लो पकड़, जाने न दो, जल्दी करो,
दिल गया जिसका वही बेदिल रहा॥
क्यों बहाते आँसुओं की बाढ़ में
लोक को, नभ को तथा पाताल को।
क्यों लगाकर आसुओं के तार तुम
हो बुलाते आज जगतीपाल को॥

संसृति में पगपग पर दुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

रजतकरों के झीने-पट से कोमलगात छिपाया।
तारक-हार पिन्हा रजनी को रिमझिम रस बरसाया।
निर्झरिणी के निर्मल-जल में धो-धो बदन नहाया।

कहाँ इन्दु वह राहु-विमुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

भीनी सुरभि उठी गुलाब की मधुप हुए मतवाले ।
नवल पँखुरियों के स्वागत में नाच-गान मधुप्याले ।
बेसुध रँगरलियाँ आये बनबन से मिलनेवाले ।

वह विनाशमुख के सम्मुख है ।
मृत्यु-अंक में सुख है ।।

पहनाती सेवा-रत कमला नव-मणियों की माला ।
सरस्वती ने भी वैभव जिसके स्वर में भर डाला ।
स्वर्ग चरण पर जननी के नित लोट रहा मतवाला ।

निधन-ओर उसका भी रुख है ।
मृत्यु-अंक में सुख है ।।

कविता में कैसे भर दूँ मैं
अपनी दुखद कथाएँ।
मानस-तह में छिपी रहेंगी
मेरी अमर व्यथाएँ॥

पावस-घन सा बरस रहा
झर-झर आँखों से पानी।
मैं कहता, मैं ही सुनता हूँ
अपनी करुण-कहानी॥

आँखों में लज्जा कैसी, क्यों
तन पर मलय लिपे हैं।
माँ, तेरे चरणों की रज में
सौ-सौ स्वर्ग छिपे हैं॥
क़फ़न हटाले झाँकी का मैं
अपलक दर्शन कर लूँ।
पलकों में मैं तुझे चुराकर
आँखों में जल भर लूँ॥

दुख पड़ने पर रोकर कह
उठता था माई - माई।
अभी खेलता था रज में
क्यों सन्ध्या सी मुरझाई॥
मृदु-शय्या पर कुसुम बिछाऊँ
रो-रो रथी सजाऊँ।
मेरे घर में आग लगी है,
या मैं उसे बुझाऊँ॥

पलक खोल दे सिसक रहा है
दे दे एक खिलौना।
उलझ-उलझकर मर जायेगा
तेरा यह मृगछौना॥
पीतांबर का वसन पहन किस
पुर को चली कहाँ तू?
बाँसों की चढ़ हरित रथी पर
रुक-रुक चली कहाँ तू?

कई बार अपने को खोकर
मैंने तुझे रुलाया।
अभी लोरियाँ सुना-सुना
थपकी दे मुझे सुलाया॥
तू बैठी रोती थी, मैं भी
गोदी में रोता था।
इसी तरह निशि कटती थी,
यह निष्ठुर जग सोता था॥

मैं सोता था, तू रोती, मैं
रोता हूँ, तू सोती।
छीन लिये मेरी आंखों ने
उन आंखों के मोती॥

अभी दूध से सींच रही थी
नन्हें से पौधे को।
कहाँ चली तू लेने मुझसे
भी मँहगे सौदे को॥

मधुर जिनके चिन्ह से मेरा सदन
एक अनुपम बन रहा सुरधाम है।
माँ, तुम्हारे उन पदों की धूलि को
मुझ अकिंचन का विनीत प्रणाम है।।

सुन निठुर उन्नीस सौ इक्यानबें
तीज सुन, सावन बदी रविवार सुन ।
कौन-सा मैंने किया अपराध जो
आज तुम सबने मुझे धोका दिया ॥
ग्रीष्म की मन्दाकिनी-तनु-वीचि-सी
ह य, क्यों परिक्षीण-दन तू हो गयी ।
क्या हमारी भाग्य-रेखा ही मिटी ?
या लगी अन्तिम समाधि अनन्त में ॥

मैं खिलौना हूँ तुम्हारी गोद का,
माँ, तुम्हारे मधुर-स्वर का वेणु हूँ ।
मैं हृदय हूँ, नयन हूँ, मैं लाल हूँ,
माँ तुम्हारे कमल-पद की रेणु हूँ ॥
लाडिला अन्तिम तुम्हारा हूँ वही,
सतत दुख सहती रही जिसके लिये ।
माँ, कन्हैया कृष्ण प्यारा हूँ वही,
बावली बनती रही जिसके लिये ॥

हा, रथी उठती तुम्हारी किसलिये,
जननि ! मुझको छोड़ किस पर जा रही।
ऐ स्वजन, ऐ बन्धुओं, ऐ भाइयो,
तुम बुझाओ आग घर में है लगी ॥
बाँस की निर्मल रथी, तू धन्य है,
ऐ क़फ़न, सब भाँति तू भी है सुखी।
एक मैं ही सृष्टि में हतभाग्य हूँ,
जो न माँ के काम का समझा गया ॥

ऐ जलद, मेरे दृगों में वास कर,
ऐ कठिन पाषाण, आ, तुझसे मिलूँ।
हृदय के सुख, जा, न अब मैं योग्य हूँ,
वेदने, आ, कण्ठ से तुझसे मिलूँ ॥
गगन के तारे-तरैया चैन से
यामिनी की गोद में खेलो, हँसो।
अब न खेलूँगा हँसूगा साथ मैं,
छीन वे दिन दैव ने मेरे लिये ॥

चाँदनी हँसती-हँसाती है तुम्हें,
ऐ कुमुद, आकल्प तुम फूलो-फलो।
पर हृदय, तुझको न यह अधिकार है
विरह-दुख से रात-दिन घुल-घुल मरो॥
दिन गया, निशि भी चली, रवि आ गया,
कमल खिल-खिल मधुप से मिलने लगे।
तन हिला न, खिला न, माँ का मुख कमल
हाय, तरु के पात तक हिलने लगे॥

है यही वाराणसी - मणिकर्णिका,
माँ, अमल-मन्दाकिनी-तट है यही।
शिवपुरी यह है, यही कैलास है,
माँ, तनिक पलकें उठाके देख ले॥
'सत्यं'-श्रद्धा सी 'जगत' की शक्ति सी,
'विष्णु' की महिमा हमारी भक्ति सी।
सो न दारुण दारु के इस सेज पर
हा, चिता सा बन रहा यह दारु है॥

हा, न देखा जायगा यह रूप अब
पलक के परदे नयन, तू डाल ले।
हा, न मन, तू सोच आगे की क्रिया
देर मत कर हृदय, तू गति बन्द कर ॥
जल उठी भीषण चिता हा, जल उठी,
हा, चिता की गोद में माँ जल उठी।
देख सकता न तेरी यह दशा
लिपट जाने दे मुझे माँ, अंक से ॥

बाढ़ है तेरे तरंगों में प्रबल
पास ही तू बह रही है वेग से।
आज गंगे! कर अकिंचन पर दया
एक आने दे चिता पर लहर तू ॥
ऐ जलद! आओ उमड़ कर व्योम में
एक क्षण बरसो चिता पर आज तुम।
आँख के आँसू, गिरो, झर-झर गिरो,
दो बुझा जलती चिता की आग तुम ॥

चुप हुए तरु, नगर के जन चुप हुए,
चुप हुई रजनी, चिता भी चुप हुई।
चमककर सौदामिनी सी छिप गयी,
हाय, माँ दीपक-शिखा सी बुझ गयी॥
सलिल-रेखा थी सलिल में मिल गई,
हा, भिखारी-कामना सी क्या हुई।
लय हुई, थी चपल-मन की कल्पना,
एक छबि थी, बुलबुले की, मिट गयी॥

हाय, जिसका मोह इतना है मुझे
फट रहा मेरा हृदय जिसके लिये।
हाय, जिसके विरह से बेचैन हूँ
अंजली भर राख में वह खो गयी॥
राख में सर्वस्व मेरा है छिपा,
जाह्नवी, थाती तुझे हूँ सौंपता।
ले, मिला ले तू तरंगों में उसे
साथ ही कैलास पर कल्लोल कर॥

(मातृ-वियोग में)

ऐ भाभी के प्राणनाथ,
माँ की आँखों के तारे।
ऐ मेरे उद्गार, हृदय के,
ऐ प्राणों के प्यारे॥

ऐ कुल के अनुराग, बन्धु के
भाग्य, इन्दु रजनी के।
ऐ वसन्त के मलयानिल,
ऐ हीरकलाल मही के॥
मलयसुरभि भर फूल लगाये,
विहसी डाली - डाली।
बिना खिले अब कहाँ चले,
इन दो फूलों के माली॥

वह प्रभात, वह मधुपराग,
वह मलयानिल अपना था।
कौन जानता था क्षणभर के
जीवन का सपना था॥
आज हलाहल-भरे क़फ़न से
कितना प्रेम निराला।
ऐ मेरे सुकुमार - हृदय,
ले लो आँसू की माला॥

घरवालों के भग्न-हृदय में
आग लगाने वाले।
कहाँ चले एकान्त कुटी में
धुनी रमाने वाले॥
ऐ अनन्त के पथिक, विरह में
तेरे कितनी ज्वाला।
आँखों से झर-झर गंगा की
लहर बहाने वाला॥

मृग-मरीचिका है शरीर में
निःश्वासों का नर्त्तन।
कौन जानता था तेरा है यह
अन्तिम परिवर्तन॥
आँसू में स्मृति-मदिरा के
दो बिन्दु छलकते पाये।
पागल बनकर आँखों से
झर-झर आँसू बरसाये॥

आँखों का विश्राम, खुली
पलकों का दर्शन करना।
पिघल-पिघलकर प्राणों का
मेरी आँखों से झरना॥
राजमहल के दीप, क्षणिक
तेरा जलकर बुझ जाना।
उपवन के सरस-सुमन,
तेरा खिलकर मुरझाना॥

ऐ नन्दन के पारिजात,
तेरा छिपकर गिर जाना।
ऐ रसाल के तरु सुवासमय,
बौर-बौर झर जाना॥
चलदल के चंचल-किशोर,
तेरा हिल-हिल बहकाना।
एक लहरिका के स्वागत मे
अपना विश्व गँवाना॥

(भ्रातृ-वियोग में)

क्या अन्तिम अभिवादन था ?
क्या अन्तिम गुरु की सेवा ?
क्या वह अन्तिम दर्शन था ?
क्या गुरु हो काल-कलेवा ?

हा, विकल कल्पनाएँ हैं,
व्याकुल है कविता मेरी।
कैसे कुछ छन्द लिखूँ मैं,
पीड़ा देती है फेरी॥

किस रवि के छिप जाने से,
गुरु-गृह में तम छाया है।
करुणा विलाप करती है,
रोता क्रन्दन आया है॥
क्यों मलिन दिशाएँ रोतीं,
क्यों विपति-घटा है छायी।
आँखों की गंगा-यमुना
में बाढ़ अचानक आयी॥

वे मुझे याद हैं दिन, वे
जीवन के सुख की घड़ियाँ।
हा, वे ही ढुलक रही हैं
बन-बन आँसू की लड़ियाँ॥
प्राणों में कैसी हलचल,
मानस में कैसी आँधी।
क्यों फैली विस्तृत जग से
जो प्रकृति आपने बाँधी॥

शिर पर त्रिपुण्ड अंकित है,
गंगा-जल से तन धोये।
रुद्राक्ष गले में पहने
क्यों मौन साधकर सोये॥
चन्दन-चर्चित यह अर्थी
घर से बाहर निकली क्यों।
धीरे-धीरे गलियों से
गंगा की ओर चली क्यों॥

नभ से फूलों की वर्षा
क्यों सुर-जमात है आयी।
इस माया की दुनिया से
गुरु की है आज बिदाई॥
किसको गोदी में लेकर
यह चिता अलग जलती है।
मत पूछो विधवा-उर की
यह आशा ही चलती है॥

हाथों से आज मिटा दी,
किसने सुहाग की रेखा।
कल विधवा के शिरपर थी,
सिन्दूर-राग की रेखा॥
पुतली की ज्योति नहीं है,
अब कैसे आँखे खोले।
उसका धन छीन गया है,
किस साहस से कुछ बोले॥

विधवा को चुप न कराओ,
घुल-घुलकर रो लेने दो।
अपने सन्तप्त हृदय को
आँसू से धो लेने दो॥
विधवा के भग्न-हृदय में
कितनी घायल बाते हैं।
उसमें गुरु के संचित दिन,
उसमें गुरु की राते हैं॥

गंगा-प्रवाह में कम्पन,
क्यों आज मलिन है काशी।
मत छेड़ो, क्षण रोने दो,
'गंगाधर'- विरह - उदासी ॥
गिरिजा की मुख-मुद्रा में
इतना क्यों परिवर्तन है।
किसको अपने में पाकर
प्रलयंकर का नर्त्तन है॥

कहता है कौन नहीं हैं
मेरे गुरु जीवित जग में।
आँखों के परदे फेंको,
देखो मेरी रग-रग में॥
मेरी वाणी में देखो,
है ताक रही गुरु-काया।
मेरे शब्दों में देखो,
है झाँक रही गुरु-छाया॥

मेरा अस्तित्त्व टटोलो,
उसमें गुरु की प्रतिभा है।
मेरे अन्तर को खोलो,
उसमें गुरु की प्रतिमा है।
मेरी भापा से पूछो,
तुम किससे इतनी निखरी।
मेरी कविता से पूछो,
तुम किससे जगमें बिखरी॥

क्यों इतना इन्द्र चपल है,
किसके स्वागत में आकुल।
है कौन जा रहा जग से,
किससे मिलने को व्याकुल॥
किसकी जय-जय की ध्वनि से
कोलाहल है सुरपुर में।
किसके दर्शन की इतनी
उत्कण्ठा है सुर-उर में॥

नभ में प्रकाश कैसा है,
है मुक्ति किसी ने पाई।
शिब की प्रतिमा में देखो
गुरु की है ज्योति समाई॥

इस काव्य-कलस में कैसे
भर सके गुणों का सागर।
उसका वर्णन कैसे हो
जो था संसार-उजागर॥

(गुरु-पद-विरह में)

गगन पर चाँद हँसता जब
धरणि पर रस बरसता है।
शशी को चूमने को जब
जलधि का जी तरसता है।
तृषित वसुधा सुधाकर की
सुधा से जब नहाती है।
विकल अन्तर तड़प उठता
तुम्हारी याद आती है।

नये किसलय निकलते जब
नये जब फूल खिलते हैं।
मलय के मन्द बहने से
अलस तरुपात हिलते हैं।
कही छिपकर मधुर स्वर से
पिकी जब गीत गाती है।
हृदय में टीस उठती है,
तुम्हारी याद आती है।

पवन के पंख पर उड़तीं
घटाएँ जब उमड़ती हैं।
घटा की श्यामता मे जब
बकुलियाँ पुलक उड़ती है।
पड़ी घन-अंक में बिजली
कभी जब चिहुँक जाती है।
विकल आँखें बरसती हैं
तुम्हारी याद आती है॥

विहग के साथ विहगी जब
प्रणय-विह्वल बिचरती है।
मिलाकर पंख पंखों से,
पुलक जब तान भरती है॥
मिलित जब रागिनी उनकी,
हवा में गूँज जाती है।
कलेजा काँप उठता है
तुम्हारी याद आती है॥

सब लोग मुझे समझाते हैं।

आगे की सुधि लो, गत भूलो,
सब लोग मुझे फुसलाते हैं।
बीती बातों पर ध्यान न दो,
सब लोग मुझे बहलाते हैं॥
जिस पर अपना कुछ बस न चले,
जिस पर अपना अधिकार नहीं।
उसकी ले याद न मूढ़ बनो,
यह कहकहकर बहकाते हैं॥

इस जलती-बुझती दुनिया में
प्रारब्ध-भाग्य-संयोग प्रबल।
इस हँसती-रोती दुनिया में
कृतकर्मों का फल-भोग प्रबल॥
विधि ने जो टाँक दिया शिर में
उसको न मिटा सकता कोई।
कल्पित आधारों के बल पर
सब लोग मुझे भुलवाते हैं॥

हँस लो, हँस लो रोना होगा
रो लो, रो लो हँसना होगा।
यह आदि नियम, यह अंतिम ध्रुव
उजड़े को फिर बसना होगा।
जो आया उसे गया समझो
जबतक हो दैव-दया समझो।
दो साँसों के संगी-साथी
यह कह कह सँग बिलखाते हैं ॥

रोगी को वैद्य घनेरे हैं,
पर-उपदेशक बहुतेरे हैं।
औषध बतला सिखला जाते
घटते पर रोग न मेरे हैं॥
यह व्यथा अगर उनको होती
जो लोग दवा बतलाते हैं।
तो मेरे दर्द समझ जाते
जो लोग मुझे सिखलाते हैं।

[stamp]

तुम मत मुझको हैरान करो।

पहले कवि का अध्ययन करो
कवि की इच्छा न तुम्हारी है।
उस पर तुम इतना जोर न दो
आकुल-मन की लाचारी है॥
तुम गीत - साधना में मेरी
व्याकुल वाणी से काम न लो।
मैं विकल-हृदय चिंतित-मानव
मुझसे कविता का नाम न लो॥
मुझको एकाकी रोने दो तुम मत करुणा का दान करो।
कैसे पालन आदेश करूँ
जब कण्ठ नहीं खुल पाता है।
कैसे हठ का सम्मान करूँ
जब दग्ध-हृदय घबड़ाता है॥
शीशे सा जो मन टूट गया
उसमें कैसे उत्साह भरूँ।
तुम रसिक, तुम्हीं निर्णय कर दो
मैं वाह भरूँ कि कराह भरूँ॥
सामर्थ्य तुम्हें हो तो मुझको पथ बतला कर गतिमान करो

तुम इतने कविता के प्रेमी
तुम इतनी आकुलता लाये।
तब क्यों न व्यथा पहचान सके
जब इतनी भावुकता लाये।
कवि के सँग रो न सके, उसके
भावों को समझ सकोगे क्या।
उसकी कविता की गति-यति की
उलझन में उलझ सकोगे क्या ॥
तुम व्यर्थ बहसकरकर अपने तर्कों का मत अवसान करो।
यह भी सन्देह सताता है
नत-शीश उठावोगे कि नहीं।
मेरी कविता के व्यंग्यों के
तुम अर्थ लगावोगे कि नहीं
यदि भाव समझ में आ न सका
निज को तुम तक पहुँचा न सका।
तो तुम भी कह पछतावोगे
यदि स्वर से कविता गा न सका ॥
तुम समझा-समझा कर मेरी पीड़ा का मत अपमान करो।

जब सबने आहत को छोड़ा
सम्बन्ध जनम भर का तोड़ा।
तब दुर्दिन में सहसा आकर
इसने मुझसे नाता जोड़ा॥
यह व्यथा प्रिया से भी प्यारी
वह दूर, निकट यह राज रही।
वह एक लहर सागर की थी
यह जीवन को अन्दाज रही॥
पहचान सको तो पहचानो तुम मत हठ का अभिमान करो।

तुम कवि का आदर क्या जानो ।

कवि ने अपना तन जला दिया
तप-तप कर भरी जवानी में ।
कवि ने अपने को गला दिया
आँसू के खारे पानी मे ।।
कवि ने जीवन संकल्प किया
निष्काम तुम्हारे हाथों में ।
तुम हृदय-हीन, तुम नयन-हीन
तुम उस कवि को क्या पहचानो ।।

जब-जब तुम दुख से आह भरे
तब-तब कवि विकल कराह उठा ।
जब-जब जग से सन्तप्त हुए
तब-तब कवि-उर में दाह उठा ।।
जब तुम अपना पथ भूल गये
तब कवि ने पथ-संकेत किया ।
तुम स्वार्थ-पूर्ति में लगे रहे
तुम कवि का कहना क्या मानो ।।

कवि ने मधु-मधु-रस बरसाये,
तुम सभ्य बने लघु से महान।
गत को गीतों मे बाँधा तो
तुम पुलक उठे कह वर्त्तमान ॥
गाये जब कवि ने गीत अमर
तब युग-युग के उत्थान हुए।
तुमने कवि का स्वागत न किया
तुम कविता का स्वर क्या जानो ॥

कवि आज व्यथा से चूर हुआ,
इन साँसों से मजबूर हुआ।
तब तुम समझाने चले अबुध,
जब कवि कविता से दूर हुआ ॥
तुम द्रव न सके पाषाण-हृदय,
कवि की आँखों में पानी है।
तुम पाषाणों का मोल करो,
तुम मोती का दर क्या जानो ॥

(पत्नी-विरह मे)

पृथ्वी

३३६

पंक्ति

खोज रहा है अहो कैमरा
ले किस उर में तीर।
अरे तसौवर, खिंच ले मेरे
अन्तर की तसवीर॥

अधुनाव्रजाव्रज माधवाव्रज, किन्न पश्यसि मे दशाम् ।
आगच्छ रक्षक, पापिनान्नाशाय तरसा मेधसाम् ॥

भो ज्ञेय, ध्येय, विधेहि पावन-साधुता-संचालनम् ।
करुणानिधे, करुणानिधे, करुणानिधे कुरु पालनम् ॥

सन्दर्शनेनागत्य परमानन्द, नाशय पातकम् ।
भो चक्रपाणे, वीर, मारय पाणिना मम घातकम् ॥

विनयेन सह कथयामि त्वाऽहं विद्यया-हीनोऽस्म्यहम् ।
कृपया-विना भो, भो मुरारे, आकुलो दीनोऽस्म्यहम् ॥

तव पद्मपदयोरस्मि धूलिः धीपते, अवनीपते ।
जानीहि दासं सर्वदा गीतापते, जगतीपते ॥

पावन-परम-पद-प्रीतिदे, आनन्ददे, आधारदे।
कविबुद्धिदे, सुखदे, मनोहर-भावदे, सुविचारदे॥
विज्ञानदे, धीज्ञानदे, जगदम्ब, वाणि, विशारदे।
कल्याणदे, बलदे, सदा जय शारदे, जय सारदे॥

गोनाथं भवपूजितं शिवकरं गौरीगणेशप्रियम्।
विद्याभूति-विभूषितं, हितकरं वाराणसीवासिनम्॥
रामा येन सती कृता सुमनसामामोदमाला धृता।
वन्देऽहं तमसां हरं सुरगुरुं संपूज्य-'गंगाधरम्'॥

गत-सकल-विवादं, कर्मणा पूतनादम्,
कुशलवसुतमेशं, वासमुद्रं यमेशम्।
त्रिभुवनगुणकेन्द्रं, धामदं धन्युपेन्द्रम्,
अपगतमृगतृष्णं, रामकृष्णं नमामि॥

याश्लेपरम्या सरसा प्रसन्ना।
सकान्त्यलंकारभराभिरामा॥
हरेत्पदन्यासतया न चेतः।
सा कामिनी का कविता च काऽसौ॥

भाव के तरंग में सदैव लहराता रह,
पहन गले में पद-प्रेम की तवीज जा।
गगन-मही में नव सुषमा विलोककर,
प्रीति की सुधा से मन, एकदम भीज जा॥

भूल अपने को जा, न भूल रघुनायक को,
उनके निराले पद-पंकज से पीज जा।
जा, जा तू घुले जा, हरि-प्रेम के सुधारस में,
मेरे कहने से एकबार तू पसीज जा॥

माया देख-देखकर तू न मोह-मग्न रहे,
तामस-प्रवृत्तियों से भावना भगी रहे।
हो विवेक तो सदैव विश्व के भला के लिये,
तुझसे चरित्रता-पवित्रता ठगी रहे॥

धन के न धाम के न काम के गुलाम रहे,
राम के गुलाम रहे चाहना जगी रहे।
जीभ से कहे कि राम-राम की रटन करे
राम ही घटन करे कामना लगी रहे॥

पथ में पलकें बिछी हुई हैं,
आओ हे सुकुमार।
स्वागत में पहना दूँ तुमको
अपने उर का हार॥

मन के आसन पर बैठो तुम,
आओ कुशल - समाज।
सुधा-भरे उपदेश मनोहर,
मुझे सुनाओ आज॥

कलरव करते हैं स्वागत में
होकर खग अनुकूल।
बरस पड़े जग के सुजनों पर
मेरे मुँह से फूल॥
मुसुकाते फूलों का गजरा
आओ पहनो आज।
फूला-फला करे फूलों-सा,
जगमग शिर का ताज॥

क्यों न सभा शिरमौर बनेगी,
क्यों न चढ़ेगी शीश।
जिसके नायक बने हुए हैं
विश्वरूप जगदीश॥
हँसने लगीं मनोहर कलियाँ,
लगे फूलने फूल।
स्वागत-गान लगे गाने अलि
प्रेम-विश्व में भूल॥

रसिक-शिरोमणि, आ जाओ तुम
दूँ मैं पाँव पखार।
चरणामृत से सींच जगा दूँ,
सोया कुल - परिवार॥
फैल रहा है जो आपस मे
दिन-दिन अत्याचार।
अहो वीरवर, कर दो उसका,
वाणी से संहार॥

माई के हैं लाल एक ही,
ऐसा हो सुविचार।
ज्ञान-ज्योति से झलक पड़े
फिर मंगल का संसार॥
क्या मैं तुझको दे सकता हूँ,
सेवा में उपहार।
हे वाणीमय, देव, करो तुम,
श्रद्धाञ्जलि स्वीकार॥

जिनका निरालापन सिद्ध
है भुवन - बीच
परम प्रसिद्ध शुचि
पात्र विरदों के हैं।
जिनको सरस रचना का
रहता है मद
एक ही विनाशक जो
उनके मदों के है॥

भुवन-विभूति 'हरिऔध'
जो सुधा से भरे
विमल - मयंक - रूप,
तामस - गदों के हैं।
सेवक उन्हीं के अनु-
गामी हैं उन्हीं के हम
शिष्य भी हैं, रज-कण
पावन पदों के हैं॥

करता प्रसन्न निज
उदय दिखा के नव,
पुत्र के समान ही
नितान्त प्राण-प्यारा ।
गिरती अवस्था-हेतु
सुखद सनेह भरा
लकुट-समान एक-
मात्र मैं सहारा हूँ ॥

जो कुछ सिखाया उसे
ध्यान से मनन किया
रहता उसी से बना
मंजु नेत्र-तारा हूँ ॥
उनसे पढ़ाये गये
यद्यपि अनेक पर
सबसे अधिक हरि-
औध का दुलारा हूँ ॥

मत्त-सा बकें न कवि-
साधना सरस है न
नीरस है जीभ रस
चखने न आता है।
आपको सदैव बढ़ने
की लालसा-सी लगी
खेद है कि आगे
पैर रखने न आता है ॥

फूँक से पहाड़ को
उड़ाना चाहते हैं किन्तु
मुख से अभी तो कुछ
बकने न आता है।
आपके समक्ष स्वच्छ
रतन अनोखे रखे
पारखी बने हैं क्या
परखने न आता है ॥

याद रहे मन्द मकड़ों
के तानने से जाल
रुक सकता है कभी
वेग पवि का नहीं।
निन्दा करने से रस-
हीन पंकजों के नित्य
मान घट जायेगा
मयंक-छबि का नहीं॥

युगल करों से
वंचकों के फेंकने से धूल
मन्द पड़ता है कभी
तेज रवि का नहीं।
दूषण दिखाके व्यर्थ
कोई भी असूया करे
विभव घटेगा कभी
वीर कवि का नहीं॥

बल की प्रचण्डता से
हो गया प्रमत्त तो भी
जम्बुक-समाज मृग-
राज का करेगा क्या।
कर दे तयारी यदि
युद्ध करने के लिये
खग का समूह
खगराज का करेगा क्या॥

चमक - दमक कर
गिर जो पड़े तो कहो
शस्त्र - समुदाय एक
गाज का करेगा क्या।
लिखने न आता जिसे
एक कविता भी कभी
वह अपमान कवि-
राज का करेगा क्या॥

मौत की सहेली सगी, नारी शूर-वीरन की,
वायु की सवारी पर आह-दाह गही है।
मुण्डन की माल सों करति चण्डिका को भीत
आओ-आओ लखो लोगो लूक-लूह यही है॥

डाँटे देति सैनिन को, बैरिन को छाँटे देति,
रन मैं सपाटे देति, पाटे देति मही है।
काटे लेति घोरन को, हाथिन को चाटे लेति
ऐसी शमशेर शेर क्षत्रिन की रही है॥

चिल्लनि सी चौंकि - चौंकि नाचति है वीरन मैं,
रावन के हाथ रही जो कृपान वही है।
लपकि-लपकि कण्ठ लागति है नागिन-सी
बार-बार बैरिन में आग बार रही है॥

उलटि-पलटि देति छिन में कहीं को कहीं
सोनित के सिन्धु में अनेक बार बही है।
करति कराल - किलकार - ललकार बार-
पार खरधार तलवार आय रही है॥

आग दहकी है बहकी है या किसी की आह,
मौत ही चली है या कि गोली ही किसी की है।
यम की कटारी, आरी, भूखी महामारी या कि,
रूखी कालिका सी, जली आग बिजली की है॥

तीखी है अनी सी तलवार सी छुरी सी तेज,
चीरती कलेजे अरे, नोक बरछी की है।
होते क्यों अधीर अरे, दुश्मन हमारे अभी
भृकुटी ज़रा सी चढ़ी मालवीय जी की है॥

कोप के हुतासन में जारिहौं कुबंसन को,
पापिन की लोथन सों भूतल को भरिहौं।
मारि - मारि कोड़न सौं लै हौं हौं उधेरि खाल,
भूलिहू हसोड़न के फेर मों न परिहौं॥

चूर कै चवायिन को, चीरि - चीरि चायिन को,
नास आतितायिन को आँखि मूँदि करिहौं।
दौरि-दौरि दूर - दूर दै - दै दुख-दैन्य-दान,
दारिका - दलालन को दालिन लौं दरिहौ॥

बन के कराल वक्रव्याल डस लेंगे कहीं,
तेज हर लेंगे बने बीरव्रत - धारी हैं।
खादी पहनेंगे मसलेंगे तुम्हें पैरों तले,
औरों से तुम्हारे लिये लाते महामारी है।।

जिसके लिये हैं उठे लेंगे देख लेना वही,
कहते हमीं को महाकाल क्रान्तिकारी हैं।
गोले सह लेंगे, दहलेंगे पर छातिन को
जानते नहीं हो हम देश के पुजारी हैं?

जिसकी कला को देख शारदा-शिवा को सदा,
वैसी कलावाली बनने की कामना रहे।
जिसको अनोखे नये काम ही से काम रहे,
मान-महिमा की कामना से काम ना रहे॥
विचला कहावे कभी भूल के न भूतल में,
चाहे जिसे लाख विपदा से सामना रहे।
हे हे भगवान आज दे दो वरदान यही,
ऐसी नायिका का नित्य नायक बना रहे॥

क्रोध में तुम्हारे विकराल कालिका है बसी,
शान्ति में तुम्हारी सदा वास कमला का है।
ज्ञान में छिपे हैं वसुधा के अनमोल ज्ञान,
बोल में तुम्हारे शुभ-सदन सुधा का है॥
हास में विलास करता है चन्द्रमा का हास,
उड़ती तुम्हारे पास प्रेम की पताका है।
विश्व में कहो तो फिर कौन है तुम्हारे तुल्य,
कोई अंश भूतल तुम्हारी ही कला का है॥

जिस जाल में फाँसते हैं वे मुझे
वही जाल मिलेगा उन्हें भी कभी।
लड़वाते हैं जो मुझसे किसी से
वही भाँवर देगा उन्हें भी कभी॥
यदि गाड़ते काँटा सुमार्ग में तो
वही काँटा गड़ेगा उन्हें भी कभी।
सन्देह का भूत सवार है तो
पछताना पड़ेगा उन्हे भी कभी॥

जब जीवन के बिखरे कणों को
चिड़िया यमराज की खा रही है।
तब क्यों परवाह करूँ किसी की
जब मौत किसी दिन आ रही है॥
प्रभु का ही भरोसा किया करता
उर में उसी की छवि छा रही है।
चलता ही रहूँगा उसी चाल से
जिस चाल से जिन्दगी जा रही है॥

यह मानता हूँ कि विपत्तियों के घन
जन्म ही से मँडरा रहे हैं।
जब से प्यार माँ का गया तब से
नभ से उतरे दुख आ रहे हैं॥
जो सगा है दगा करता है वही,
सगे बन्धु ही आफत ढा रहे हैं।
जिस ओर हूँ चाहता जाना सखे,
उस ओर न पैर ही जा रहे हैं॥

मुझको कुछ तारनेवाले मिले
कुछ लोग सुधारनेवाले मिले।
कुछ ने दंश दे दिये साँप से तो
विष को भी उतारनेवाले मिले॥
विपदा में फँसा जो कहीं पर तो
विपदा से उबारनेवाले मिले।
दुतकारनेवाले मिले तो वही,
हँस के भी दुलारनेवाले मिले॥

सुख में किया प्यार जिसे उसी रो
दुख-रंज में वैर घना हुआ है।
मुँह में न लगाम लगी किसी के
सच-झूठ का ताना तना हुआ है॥
सब ओर से कीच उछाले गये
सब ओर से पानी बना हुआ है।
किससे किसकी मैं कहानी कहूँ
हर एक कहानी बना हुआ है॥

जिसके शुभ-स्वागत में अभी हैं
सुभनावलियाँ रजधानियों में।
जिसकी गणना अभी ज्ञानियों में
शिरमौर बना अभिमानियों में॥
जिसके गुणों की है कहानी सखे,
कही जाती अभी सब प्रानियों में।
वह रौरव का दुख भोग रहा
अपने ही घरों के गुमानियों में॥

रति के कपोल सार-हीन अवलोक कर,
उनपर मानो वास करते मदन हैं।
बाल-लाल-गाल पर हैं न काले-काले तिल,
रति-मंजु-भाव के मनोहर सदन हैं॥

उनको मुकुर जान सूर-चाँद झाँक-झाँक,
झुक-झुक देख लेते अपने वदन हैं।
गोल-गोल अनमोल कोमल कपोल तेरे,
मेरे लोल मन, लोल लोचन के धन हैं॥

लोचनों की चाल अवलोक के हरेक पल,
लाज से विलोल आज खंजन-सुअन हैं।
पंकज-समान चल गोलक विलोक कर,
चंचल अपार होते मानव के मन हैं॥

कोमल - अमोल - अति - तरल - नवीन खिले
लोचन युवक-जन-जीवन के धन हैं।
कैसे द्विजराज जैसे सुन्दरि, वदन पर
विकच-विमोहन सरोज से नयन हैं॥

निकसे उरोज कसे विकसे सरोजन से,
लोगन के लोल-लोल लोयन में बसे हैं।
चोखे-चोखे चूचुक हैं चित्त के चपल चोर,
याही हेत चौरि-चौरि चोलिन में कसे हैं॥

वनत नुकीले जात छीलि-छीलि छातिन को,
छिपत छिपाये ते न छेदि उर धँसे हैं।
छीरनिधि-छबि-पुंजता को छोरि-छोरि छरि,
छीरवारी-छातिन पै छीरवारे लसे हैं।

देखति हौं पथ पीतम के
कतहूँ सो न आवत मोर पिया रे।
'पीकहाँ' बोलि करेजो दरै
जियरा विदरै पपिहा पपिया रे॥
'श्याम' जरै हियरा हहरै,
छतिया पै बरै दिनरात दिया रे।
जाऊँ कहाँ, सुख पाऊँ कहाँ,
कतहूँ नहिं मानत मोर जिया रे॥

लै-कै उधार हिया सो हुतासन,
चन्द जरावत मोरे हिया रे।
देखि दसा कोउ पास न आवत,
मों सो नियारी भई दुनिया रे॥
'श्याम' बिना पतिया पतियाति न
पीतम भेजत ना पतिया रे।
घूमति हौं पगली सी बनी,
कतहूँ नहिं मानत मोर जिया रे॥

आयो बरसायो सुधा वासर बितायो कहाँ,
ह्वै कै हौं चकोरी मुखचन्द को विलोकती।
चूम कै तुमारो चारु चरनारविन्दन को,
देखती लगा के दीठि, भाग-पीठ ठोकती॥
तरि जाती, जीवन की तरिहू उतरि जाती
मानहू बिसरि जाती जो न मन रोकती।
धरती मों गरि जाती, जरि जाती पावक मों,
नाथ! मरि जाती जो न तोको अवलोकती॥

धीरज बँधाती रही तौहू दुख पाती रही,
काको मुख देखि धीर कैसे रहे गहते।
आह-मौन-पीर नेकहू न सही जाती रही,
प्राणनाथ, पीर भला कैसे रहे सहते॥
तोरे बिना देह-गेह-नेह बिसराती रही
मोरे बिना दूर कहो कैसे रहे रहते।
आँसू बरसाती रही, माती रही देखे बिना,
पाती-बिना पाती रही वेदना बिरह ते॥

बन्धु गले मे पहनाते हैं जहाँ कुसुम के हार।
देवि! वहाँ दुर्बल छन्दों का कैसे दूँ उपहार॥

बिखरे फूलों की माला जो मैंने गूँथी आज।
देवि! उसे पहनाने में मुझको लगती है लाज॥

माँ, कल की घटना से अब भी, निकल रही है आह।
किसी तरह से किया अम्ब! पद-सेवा का उत्साह॥

तू ही कह, क्या दे सकता हूँ, मैं तुझको उपहार।
शुभदे! हो केवल यह मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकार॥

हे विद्यामयि, हे विभूतिमयि, शत-शत तुझे प्रणाम।
यजन-आरती का प्रकाश हो मंगलमय अभिराम॥

अविराम ज्योति से जनता की
सर्वदा बढ़ा ऊँचा लेनिन।
उन्नति की उन्नत चोटी पर
श्रेणी के साथ चढ़ा दिन-दिन ॥

मस्ती न्यूयार्क बढ़ाता है,
मैं करता हूँ स्वीकार इसे।
पर टोपी शिर पर रही न मैं
दे सकता हूँ सत्कार इसे ॥

हम वीर सोवियत जान रहे
किसका करना सम्मान उचित।
पूँजीवादी मानव-गण का
आदर करना अतिशय अनुचित॥

तुम अन्य सुमन-गण को रहने
दो चयन-प्रतीक्षा में सन्तत।
मुझको तो आर्थिक सेजों पर
बस स्वेद बहाने दो शत-शत ॥

कवि चाहे यदि सदियों तक
बनना निर्मल-यश - धारी।
कवि चाहे मानवता का
संकेतक बनना भारी॥

तो जगती के रस जिनसे
वह पीता है निसिवासर।
उन नलियों के रहने दे
पद गड़े मही के भीतर॥

ले हँसवे और हथौड़े
जग से श्रमजीवी आते।
कवि उनके भुज में जाते
जब कहीं न जीवन पाते॥

मेरे जन ने कहा, सोवियत
हेतु खड़ा हो जाऊँ।
पुण्य देश का प्रिय सपूत मैं
अतिशय आदर पाऊँ॥

मोद-मग्न हो गया बहा
संगीत - मध्य मुद मेरा।
वय झुका सकेगी कटि क्या
जब सम्मानों ने घेरा॥

वाजी वदता हूँ गायक,
यह कहाँ मान पायेगा।
इस जन्म-भूमि में ही यह
सम्मान दिया जायेगा॥

भारती

पर सुयश गान गाऊँगा
मैं उसका सुख से दिन-दिन।
जो मार्ग प्रकाशित करता
जो राह बताता स्तालिन ॥

मिल, खेतों में, खानों में,
सागर, बहती सरिता पर।
तुम मेरे सहचर स्तालिन,
बन में, पथरीली भू पर ॥

जन मुक्त हुए चलते हैं
जग-रवि के पीछे दिन-दिन।
जय जय ध्वनि का अधिकारी
मेरा पावक-ध्वज स्तालिन ॥

धन शासक से बिलगाया
कुहरे पर पानी फेरा।
जन-पथ में सुमन बिछाया
ऐसा है स्तालिन मेरा ॥

उसने जंजीरें तोड़ीं
बन असि अरि-दल को मारा।
तूफाँ - आँधी - झंझा है
वह अपना स्तालिन प्यारा ।।
रवि-दीप्त मही में गाऊँ
उसका पावन यश दिन-दिन।
हाँ, वोट सुलेमाँ का वह
पायेगा मेरा स्तालिन ।।

निज वोट सुलेमाँ ही क्या
प्रत्युत सब जनता देगी।
स्तालिन की गति, अन्तर
में भर सुख आँखें देखेंगी ।।
नारों के साथ चलेगा
नर महत् सोवियत में जब।
निज पुत्रों को ले उसमें
होगा, मेरा स्तालिन तब ।।

भूमि सोवियत सब श्रमिकों की अतिशय प्यारी।
शान्ति समुन्नति है आशा है अमित दुलारी॥

नहीं देखता देश मही पर कोई उत्तम।
चलते मानी मनुज जहाँ पर मुक्त यहाँ सम॥

मास्को से अतिशय सुदूर सुन्दर सीमा तक।
मेरु - उदधि से समरकन्द की वर वसुधा तक॥

मनुज विचरता साभिमान निःसीम अवनि का।
बनकर स्वामी गिरा दासता कठिन यवनिका॥

सभी जगह स्वच्छन्द शस्त जीवन-नद कल-कल ।
बहता ज्यों; गम्भीर प्रखर बोल्गा जल निर्मल ॥

मुक्त क्षेत्र हैं सब तरुणों के सभी हमारे ।
सभी जगह सम्मानित होते बूढ़े प्यारे ॥

फल-सुपूर्ण हैं क्षेत्र जहाँ था ऊसर बंजर ।
बसे नगर हैं वहां, जहाँ थी भूमि बिना-नर ॥

कहे जीभ अभिमानपूर्ण 'लाथी' यह अक्षर ।
इससे देते तोड़ सभी अन्तः सीमा घर ॥

इससे है सब ठौर प्रबल यह संघ हमारा ।
लुप्त हुआ संघर्ष बढ़ा निज जन-गण प्यारा ॥

साथ - साथ तातार - यहूदी - रूसी सारे।
निर्मित करते शान्ति-सहित सुख जीवन-प्यारे॥

दिन प्रति दिन सुख-साज हमारा बढ़ता जाता।
है भविष्य जाज्वल्यमान ध्वज सा फहराता॥

हम-सा चिन्ता-मुक्त न कोई जगतीतल पर।
ऐसा है न विमुक्त प्रेम-सुख हास-प्रभाकर॥

खींचेगा यदि शत्रु हमारे ऊपर प्रहरण।
चाहेगा इस प्यारी भू का नाश - प्रसारण॥

चपला-चमक-समान मेघ-गर्जन के सम हम।
देंगे उत्तर तीव्र और सुस्पष्ट अनुत्तम॥

कभी तुम्हारे शब्द निकलते जन-हित निर्मल।
तो मँडराते बाज-सदृश होते दृग चंचल॥

जो कोई भी शब्द ममोहर सुन लेता है।
अपने उर में अमर बना कर रख लेता है॥

तुमने हमें दिये मनुष्य के सब सुख दिन-दिन॥
जिसका यह था काम विमल वह जन था स्तालिन॥

भारती

सुखमय श्रम में सभी बराबर संसृति के नर ।
सबके हैं अधिकार मनोहर-अद्भुत - सुन्दर ।।

स्तालिन के ये शब्द व्यक्त अति सरल मनोहर ।
स्तालिन के ये शब्द सत्य-अतिशय-महानवर ।।

नेता, तुमने हमें ढाल दी एक भयानक ।
तारा अड़कर रत्न-जटित जिससे होता फक ।।

हमें जवानी दी बचने को काल-घात से।
और भोगने को अनन्त सुख बात-बात से॥

विमल तुम्हारी दृष्टि, हमारी दृष्टि रम्यतर।
सात्त्विक साधु विचार, हमारे ही विचार वर॥

सर्पों के गुम्मद ऊपर
है श्रमिक भूमि सुखकारी।
सर्पों के गुम्बद ऊपर
कानून श्रमिक का भारी॥

दो उर सीने में होते
तो मैं चढ़कर घोड़े पर।
ले आता उनको मास्को,
झट से पुरद्वार उतरकर ॥

लेता निकाल कटि-रेशम,
दो ज्वलित-हृदय रख देता।
रखता पावन पाहन पर,
दरबानों से कह देता ॥

यह रेशम की पोटलिका,
उपहार स्तालिन का नव।
जल उठते महाहृदय सम
क्रेमलिन में जगमग अभिनव ॥

नेतृत्व सुदल करता है
जीवन बढ़ता है दिन-दिन।
उत्तम प्रयाण श्रमिकों का
है साथ तुम्हारे स्तालिन॥

तरुणायी में जो चमकी
वह ज्योति दिखाती है पथ।
नेतृत्व जहाँ स्तालिन का
सुखमय चलता जीवन-रथ॥

रक्षा की, तब से वत्सर
आया है कठिन कदापि न।
उत्तुंग शिखर से तुमको
हैं क्षितिज देखते स्तालिन॥
अरि-भुज को तुमने तोड़ा,
दृढ़ किया बाहु को दिन-दिन।
जय-हार दिया जन-गल में
नव-जीवन-कुञ्जी स्तालिन॥

युग-युग प्रसिद्ध ओ मेरे,
जिसका है नाम मनोहर।
अद्भुत कृतियों की संज्ञा
तुमसे अति मुदित मनुज हर॥
समझा दीनों-दुखियों के
मन को तुमने ही दिन-दिन।
मैं विह्वल होकर गाता
हूँ कीर्ति तुम्हारी स्तालिन॥

[library stamp]

ऊपर - ऊपर घाटी के
उत्तुंग गिरिशिखर सुन्दर ।
अम्बर महान अत्युन्नत,
पर स्तालिन उनसे बढ़कर ॥
माना कि गगन अति ऊँचा,
पर सदृश तुम्हारे केवल ।
हैं ऊपर व्याल भयावह
निर्भीक बने मति के बल ॥

नभ में ऊँचे उगते हैं
रजनीकर - तारे जगमग ।
छवि-हीन भानु के सम्मुख
रवि की भी जाती छवि भग ॥
पावन मेधा के सम्मुख
रवि-किरण लुप्त हो जाती ।
तम चीर पार कर मेधा
निज निर्मल छवि दिखलाती ॥

❀

भारती

है कठिन धातु- जो जग में
विख्यात लोह निष्ठुरतर।
वह धातु कल्पना तेरी
है कठिन-कठोर-कठिनतर ।।
तू अति महान नभ से है
इससे ही सम्मानित वर।
सुविचार गगन - चुम्बी हैं
जन-जन सुखदायक हितकर ।।

ऊँचे पर्वत के वासी
मन में न कभी कुछ ढोते
जैसे उन गिरिबाजों के।
जन-नेत्र चमत्कृत होते ।।
जब शब्द पहुँचते तेरे
आदेश हमें देने को
तब हम उन शब्दों को ले
स्मृति में रखते सेने को ।।

कोई भी हित-शिक्षा को
यदि अवगम कर पायेगा।
तेरी शिक्षा के बल पर
रण में न कभी हारेगा॥
ऊँचे पर्वत - पुञ्जों में
उत्सुक हैं सारे जनगण।
अपने उर में रखने को
तव शिक्षा के कोमल-कण॥

तू देख, फेर मुख को तो
तुझको जनगण ने घेरा।
वे हैं तेरे अनुगामी
पथ क्योंकि मृदुलतम तेरा॥
जो एक बार भी मन से
तव सहचर बन जायेगा।
मरने के दिन तक स्तालिन
वह अनुचर बन जायेगा॥

नि:सीम गगन से भू-तक
घाटी - जंगल - पर्वत पर।
गुण बाज परम अभिमानी
गाता मँडराता ऊपर।।
तू प्रेम-पात्र है स्तालिन,
तव गौरव को ले-लेकर।
जन - हृदयों से उठता है
संगीत, उड़ रहा नभ पर।।

द्रुततर बाजों की गति से
कम्पित है अत्याचारी।
कंटकित - तार - संरक्षित
शुचि-दुर्ग गुप्त अति भारी।।
अवरुद्ध न कर सकता है
संगीत सतत प्रसरण का।
गोली-कोड़ों में बल क्या,
भय हमको तनिक न रण का।।

है साभिमान लँघ जाता
मुर्चाबन्दी खाईं बर।
रिक्सों की चलती पहियों
में, कुलियों में, नभ-भू पर॥
हलवाहों के हल से भी
हैं गीत निकलते जाते।
निर्मल जय-ध्वज से उड़-उड़
ऊँचे स्वर में बह जाते॥

तुमसे ही जन का संगर
है दिन-दिन बढ़ता जाता।
ऊँचे-ऊँचे स्वर से है
साहस-बल अमि बढ़ाता॥
अत्याचारी को मग से
दे चोट सगर्व बहाते।
कर प्राप्त महीतल पर जय
हम साभिमान हैं गाते॥

हम तेरे युग को करते
हैं सम्मानित हिलमिल कर।
सुखमय अद्भुत नवजीवन
को गाते हैं खिलखिलकर॥
अपनी पायी विजयों के
गाते सुखमय गीतों को।
अम्बर-भू-गिरि - घाटी पर
गाते अपनी जीतों को॥

घहराता यान गगन का
गर्जन करती है मोटर।
सबमें जनता के प्रेमों
का भाजन तू है सुन्दर॥
यह विजयी जनता सारी
तुझ पावन के यश गाती
सुखमय फूले न समाती
वह गा-गाकर इतराती॥

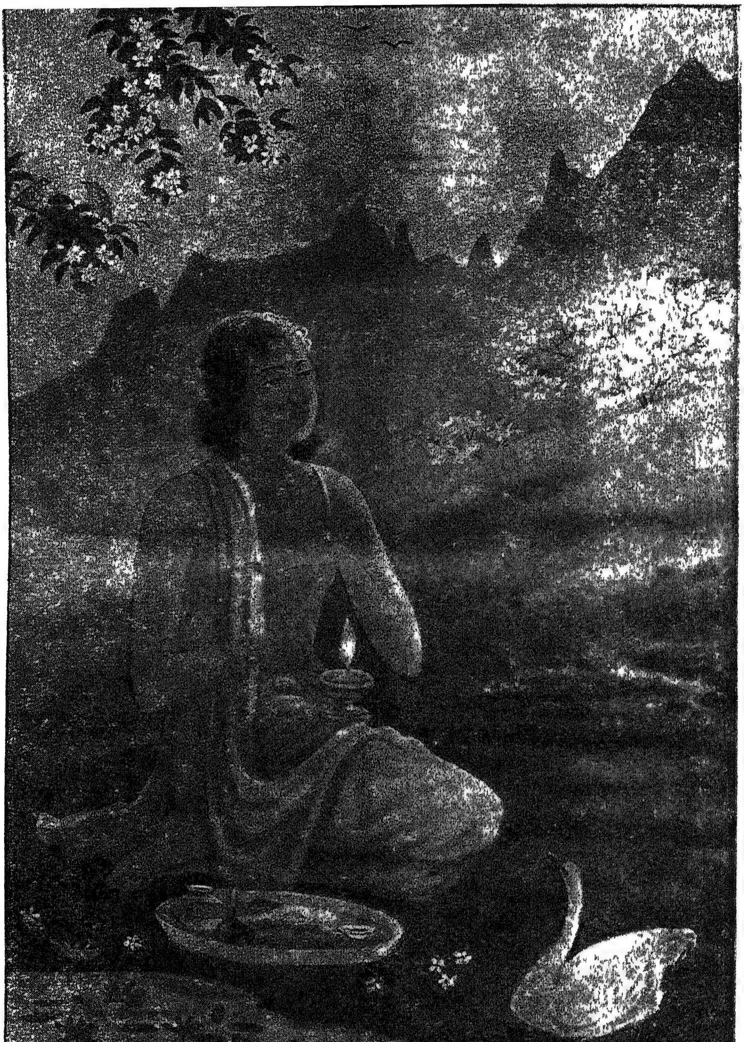

आरती

यह उदार आरती,
आरती उतारती।
राजहंस पर चढ़ी
लौ-समक्ष भारती॥

क्षितिज तोड़कर उठी,
गगन फोड़कर उठी।
यह नवीन आरती,
शीश मोड़कर उठी॥

कर्म के प्रसार की,
धर्म के प्रचार की।
यह अमर-प्रकाशिका
साधना-प्रकार की॥

यह स्वतन्त्र आरती,
ज्योति-यन्त्र आरती।
कक्ष में लिए उठी
तन्त्र-मन्त्र आरती॥

आरती गणेश की,
आरती महेश की।
कनक-ज्योति आरती
विविध-रूप-वेश की॥

आरती अनादि की,
आरती अनन्त की।
प्राण-ज्योति से जली
आरती ज्वलन्त की॥

घी-कपूर की जली,
चाँद-सूर की जली।
आरती स्वदेश की,
पास-दूर की जली॥

शिवा की, प्रताप की,
भगत की, सुभाष की।
आरती प्रभामयी,
देश के हुलास की॥

व्योम-वायु-आग की,
अम्बु, भूमि-भाग की।
किरण-चरण आरती,
राग की विराग की॥

यह उदार आरती,
आरती उतारती।
ज्ञान की, विवेक की,
एक की, अनेक की॥

शुभम्